योग मणि

लेखक :

परम सन्त कैप्टन लालचन्द जी महाराज

प्रकाशिका :

आचार्या (डॉ०) कमला देवी

- पता :

  डॉ० कमला देवी

  C/o मास्टर रमेश देशवाल

  झज्जर घाटी, नजदीक सर छोटूराम स्कूल

  चरखी दादरी, जिला भिवानी (हरियाणा)

  मोबाइल : 94164-75568

- प्रथम संस्करण : जून 2007

- मूल्य : 10 रु0

- सर्वाधिकार सुरक्षित है।

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी माध्यम से प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित करना विधिमान्य नहीं होगा।

प्राक्कथन

'योगमणि' नामक पुस्तक एक बहुमूल्य रत्न है जिसे हजूर महाराज कैप्टन लालचन्द जी जैसे पारखी सन्त ने अपने अनुभव के आधार पर तराश कर, शास्त्रीय जटिलता को दूर करके उसे सरल बनाकर लोगों के द्वारा धारण किए जाने योग्य बनाया है। इसमें योग सम्बन्धी जटिल तत्त्वों को मथकर ऐसा ताजा मक्खन लोगों के लिए तैयार किया गया है उसका आस्वादन कर लोग आनन्दित हो सके। इनका मुख्य ध्येय धर्म के रहस्य को खोलकर धर्म के पाखण्ड का पर्दाफाश कर सच्चाई को जन-जन तक पहुंचाना है। आज के युग में यह धर्म, सच्चाई व सादगी की जीती जागती तस्वीर है। ज्ञान की त्रिवेणी इनके मुखारविन्द से हमेशा प्रवाहित होती रहती है। गृहस्थ में रहते हुए भी तत्त्व धार से हमेशा जुड़े रहने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि मानो परमात्मा स्वयं ही इनके अन्तर अवतरित हुआ है। आज के महात्माओं के राजसी ठाठ-बाठ (भौतिक सुख-सुविधाओं) से दूर यह आदि सन्त कबीर जैसी रहनी के वासी हैं। सच तो यह है कि इनकी महिमा का बखान करने के लिए मेरे पास शब्द ही नहीं है क्योंकि राम के वास्तविक रूप को जानने के लिए कई महात्माओं के पास भटकने के बाद जब मैं इनके सम्पर्क में आई तो मैं इनके वात्सल्य प्रेम की धारा से इतनी सिक्त हो गई कि मुझे लगा स्वयं परम पिता मेरे सम्मुख खड़े हैं और फिर बहुत ही जल्दी इनकी अपार कृपा से मैंने अपने अन्तर में उस राम नाम के अमृत का पान किया और यह वह अनुभूति है जिसका मैं अपनी जिह्वा से वर्णन ही नहीं कर सकती और मैं ही नहीं जो भी सच्चे मन से इस सच्चाई को जानने की इच्छा से इनके पास आते हैं वह सभी इनकी ज्ञानमयी प्रेमधारा से लाभान्वित होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'योगमणि' में योग-सम्बन्धि सभी तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक का अध्ययन कर उसे क्रियात्मक रूप में लाने पर यह उसी प्रकार मनुष्य को शान्ति दे सकती है जैसे औषधि का सेवन करने पर रोगी को राहत मिल जाती है। जैसे महाराज ताराचन्द जी ने कहा है-

कड़वा नाम कुनीन है, डरता है बीमार।
ताराचन्द जो खाएगा, उतरे तुरत बुखार॥

यह पुस्तक साधकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसका अध्ययन करने पर धर्म-सम्बन्धी सभी भ्रम व शंकाओं के दूर होने पर साधक नाम की विधि को समझकर अपनी आत्मिक उन्नति कर सकता है। आशा है सभी पाठकगण इसे पढ़कर अपने जीवन को अवश्य सार्थक बनायेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक को छपवाने में अपना आर्थिक सहयोग देने वाले परम दानवीर श्री जे.सी. गुप्ता (यू.के.) के प्रति मैं अत्यन्त आभारी हूं जिनका सहयोग हमेशा से सराहनीय रहा है।

-डॉ० कमला देवी
प्राध्यापिका, एम.एम. कॉलेज, फतेहाबाद
दूरभाष : 01667-225520
मोबाईल : 94164-75568

भूमिका

प्यारे पाठकगण! यह पुस्तकें लिखने का मुख्य उद्देश्य मैंने अपनी पहली पुस्तकों में लिखा है। वास्तव में मैं कोई लेखक या विद्वान् नहीं हूँ। केवल गुरुकृपा से सहज ही बिना किसी यत्न के इस अध्यात्मज्ञान यानी आत्मतत्त्व का मुझे अनुभव हो गया था और इस अनुभव के होने पर मेरे गुरु जी परम दयाल पण्डित फकीरचन्द जी महाराज ने मुझे आदेश दिया कि अब तुम्हें अध्यात्म-विषय के लिए किसी योगसाधन की आवश्यकता नहीं है। सहज में परमात्मा की लीला का अनुभव करते रहो और साक्षी भाव से आनन्द लेते रहो। तुम्हारी मंजिल छोटी थी और तुम मंजिल पर पहुंच गए। इस पराशब्द से जुड़े हुए तटस्थ भाव से सुन्दर जीवन व्यतीत करो और जब समय मिले तो प्रवृत्ति मार्ग पर सत्संग देते रहो।

अब मेरी शिष्या डॉ० कमला जो मेरे प्रति विश्वास रखती है, ऊंचे दर्जे की साधवी है व सन्तों के योग में रत है, इसके द्वारा अनेक बार प्रार्थना व आग्रह किए जाने पर मैं ये पुस्तकें लिखने का काम कर रहा हूँ। हालांकि ये पुस्तकें लिखने के लिए मुझे नीचे मन के मण्डल पर आना पड़ता है और यह विचारों का मण्डल है जबकि मेरी रहनी ज्ञान योग की है जहां परमात्मा के सिवाय और कुछ नहीं है। जैसे कहा है

साधे एक आप जग माहि

सहजै रहै समाय सहज में, ना कछु आए न जाए।
धरै न ध्यान करै नहिं जप तप राम रहिम न भावै॥

तीर्थ व्रत सकल परित्यागै, सुन्न डोरी नहिं लावै।
यह धोखा जब समझु परै तब, पूजे काहि पूजावै॥

अब मेरी यह ज्ञान-योग की रहनी है। यहां कुछ करने धरने की या लिखने पढ़ने की बात ही नहीं है। यानि सहज समाधि बनी रहती है। यदि दृष्टि कहीं जाती है तो सब जगह परमात्मा के सिवाय और कुछ नजर ही नहीं आता है।

कहते हैं कि राम का वैराग्य मिटाने के लिए गुरु वशिष्ठ ने उसे धरती

का भार उतारने का काम दिया था। हो सकता है मेरे गुरु पण्डित फकीरचन्द महाराज ने यह जीवन का रस और आनन्दमय जीवन जीने की मुझे प्रवृत्ति मार्ग पर सत्संग देने का यह काम दिया हो। मुझे 1962 से आज तक कभी वैराग्य या निराशा का भाव नहीं आया। हर समय उमंग, खुशी, उत्साह बना रहता है और उठते-बैठते, चलते-फिरते सहज समाधि या समस्थिति बनी रहती है। उस समय तो मैं यह बात नहीं समझा था जब गुरु महाराज ने यह कहा था कि तेरे को वैराग्य रहेगा और यहां कुछ अच्छा नहीं लगेगा, इसलिए तूँ प्रवृत्ति मार्ग पर सुखी जीवन जीने के लिए सत्संग देते रहना और यह जो लीला हो रही है इसको साक्षी भाव से देखते रहना। यह सब उसका खेल है और आज मेरी स्थिति यह है कि मैं सभी में उस परमात्मा को देखता हूं क्योंकि वह एक है और सब में वह ही खेल रहा है। यह देखकर भोग में योग जगाता रहता हूँ।

कोई भाई-बहन ऐसा जीवन जी रहा हो तो उसके लिए मेरे यह लेख बहुत लाभ के होंगे। सन्त मत में यह एक जीवन शैली है। यह मंजिल त्याग और तप के जीवन से भी मिलती है और भोग भोगकर उपराम होकर आगे बढ़ने पर भी यह मंजिल मिल जाती है। मेरे गुरु महाराज परम दयाल पण्डित फकीरचन्द जी महाराज ने त्याग और तप के मार्ग पर चलकर यह आत्म तत्व का ज्ञान प्राप्त किया था। ऐसा महात्मा लाखों, करोड़ों में से कोई एक होता है जो इस युग में त्याग, तप, सच्चाई व ईमानदारी का जीवन जीते हुए इतनी ऊंची मंजिल पर पहुंच सकता है। और यदि मैं यह कहूं कि परमात्मा खुद ही उनके रूप में आकर अपना वह भेद दे गया जो आज तक इतना स्पष्ट रहस्य न तो किसी ने पहले खोला है और न ही अब ऐसा कोई है जो धर्म का रहस्य बता रहा हो तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। मैं उनके अहसान और ऋण से मुक्त होने के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार इन टूटे-फूटे शब्दों में कुछ काम कर रहा हूँ।

-कैप्टन लालचन्द
गांव व पोस्ट दांदू, जिला चुरू
राजस्थान-331001
फोन : 01562-283121, 283521

गुरु स्तुति

मंगलम् गुरु शब्द रूप, अनाम नाम प्रकाशनम्।
मंगलम् शब्दार्थ शब्दाधार, शब्द निवासनम्॥

गुप्त अपने आप में जब, अलख अगम अनाम आप।
जब प्रकट आनन्द ज्ञानाकार, अरु सत धाम आप॥

साज सन्त समाज मंगल, काज जीव उद्धार को।
आपने धारण किया है, परम सन्त अवतार को॥

आप हैं आधार सबके, आपके आधार सब।
वार-पार से रहित आप हैं, और वारापार सब॥

संग देकर सत का सत्संग, में जीव आधीन को।
सिन्ध सद्गति से मिलाया, जीव रूपी मीन को॥

सैन-बैन का आसरा, सत्संग द्वारा ज्ञान दे।
शब्द योग सिखाया अनहद, धाम पद निर्वाण दे॥

धन्य सतगुरु फकीर दयाला, पार भाव से कीजिए।
भक्ति मुक्ति योग युक्ति ज्ञान शक्ति दीजिए॥

योग व योग के प्रकार

योग का अर्थ है मिलाप। अध्यात्म में आत्मा को परमात्मा से मिलाना ही योग है। '**योगश्च चित्तवृत्तिनिरोधः।**' अर्थात् योग से मन के घटिया संस्कारों को हटाकर चित्त को पवित्र करना है ताकि मनुष्य अपने निज रूप का अनुभव कर मुक्त अवस्था का जीवन जी सके और प्रभु की लीला देखकर साक्षी भाव से उसका आनन्द लेता रहे। इस उत्तम ज्ञान को प्राप्त करना ही योग का मुख्य उद्देश्य है।

हमारे ऋषि-मुनियों ने शास्त्रों में बहुत प्रकार के योग लिखे हैं और समय-समय का साधन बताया है परन्तु केवल पुस्तकें पढ़ने से किसी का योग सिद्ध नहीं होता है। इस बात का प्रमाण यही है कि आज लगभग सभी घरों में रामायण, गीता, ग्रन्थ साहिब, कुरान, बाईबल इत्यादि धार्मिक ग्रन्थों के विद्यमान होने पर तथा अपनी-अपनी श्रद्धा व विश्वास के अनुसार पूजा-पाठ व मालिक से मिलने का यत्न करने पर भी लोग अधिक अशान्त व बेचैन नजर आ रहे हैं। शान्ति उनसे कोसों दूर भाग गई है तो इसके लिए आवश्यकता है किसी पूर्ण अनुभवी योगी महापुरुष की जो जीव के संस्कार देखकर तथा उसके शरीर व मन की योग्यता देखकर समय के अनुसार उसे इस योग के बारे में बता सके। क्योंकि समय के साथ सब बातें बदलती रहती है जैसे कहा है-

हालत बदलती रहती है हर वक्त वे गुमा।
तबदील होते रहते हैं ये जमीं व आसमां॥

अतः शास्त्रों में लिखी हुई सभी बातें आज के मनुष्य पर उचित नहीं बैठती हैं क्योंकि आज के मानव का खान-पान, रहन-सहन व विचार-भाव सब बदल सा गया है। इसलिए उसके योग-साधन के ढंग भी बदल गए हैं। परन्तु प्राचीन योग की विधि ऐसी है जो अब भी देखने में आ रही है। जैसे-

1. **हठयोग**-इस योग में योगी अपने शरीर के साथ हठ करता है और शरीर को कष्ट देकर जैसे एक टांग पर खड़ा होकर, धूप में बैठकर, अग्नि के सामने बैठकर, जल में खड़ा रहकर या पैदल तीर्थयात्रा इत्यादि करके अपने मन की इच्छा को पूरा करने का प्रयास करता है। इस योग से शरीर व मन में

शक्ति आ जाती है और सफलता भी किसी हद तक विश्वास के अनुसार मिल जाती है परन्तु इससे अध्यात्म-सम्बन्धी कोई लाभ नहीं होता है। यह तो बच्चे की तरह हठ करके किसी चीज को प्राप्त करने वाली बात है।

2. प्राणायाम योग-श्वांसों का लेना, रोकना तथा बाहर निकालना प्राणायाम योग है। शरीर नींव है तथा प्राण ऊपर का भवन। नींव मजबूत है तभी भवन मजबूत होगा। शरीर के रोगों को दूर करने के लिए इस प्राणयोग की इस समय में आवश्यकता है परन्तु यह किसी अनुभवी की देख-रेख में ही किया जाना चाहिए नहीं तो मानसिक सन्तुलन बिगड़ने का भय रहता है। जैसा कि रामदेव जी महाराज करवा रहे हैं। इस प्राणायाम के साधन से योगी में सिद्धि शक्ति आ जाती है। उसे मान, बड़ाई तथा धन की प्राप्ति होती है परन्तु तत्त्वज्ञान या आत्मज्ञान में उसे कुछ लाभ नहीं होता है।

3. मानसिक योग-यह मन को शक्तिशाली बनाने के लिए किया जाता है जिसमें भक्तिभाव, कर्मयोग व प्रेमयोग के साधन से मन को मजबूत किया जाता है ताकि बाहर की सभी चुनौतियों का इस पर प्रभाव न पड़े व मन मजबूत बना रहे। यह पहले दोनों योगों से उत्तम है। भक्ति योग में मनुष्य किसी देवी-देवता या गुरु पीर को इष्ट मानकर उसका सहारा लेता है व उसका ध्यान करके पूजा, प्रार्थना, आरती, विनती इत्यादि करता है। अधिकतर मनुष्य इस मानसिक योग के योगी हैं। इसमें लोगों को अपने विश्वास के अनुसार फल मिलता है। इस भक्ति योग में ही प्रेम योग भी आ जाता है क्योंकि मानसिक योगियों को अपने इष्ट के प्रति प्रेम व विश्वास होता है और इसी प्रेम व विश्वास से उनकी इच्छा शक्ति बढ़ने से उन्हें अपने कार्यों में सफलता मिलती है। जैसे मीरा ने प्रेम योग में कहा है कि-हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दर्द न जाने कोय।

इसी प्रकार कृष्ण भक्त रसखान कहता है-

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तीहुपुर को तज डारूं।
आठों सिद्धि नौ निधियों के सुख, नन्द की गाय चराय विसारूं।
कोटिक हों कलधोत के धाम, करिल के कुंजन ऊपर वारों।
रसखान कबहूं इन आंखन ते, व्रज के वन बाग तडाग निहारूं॥

मानसिक योग जो प्रेममय है, ब्रह्मानन्द जी गाते हैं-

मुझे है काम ईश्वर से, जगत् रूठे तो रूठन दे।

कुटुम्ब परिवार सुत दारा, माल धन लाज लोकन की।
हरी का भजन करने से अगर छूटे तो छूटन दे। मुझे.....

बैठ संगत में सन्तन की, करू कल्याण मैं अपना।
लोग दुनियां के भोगों में, मौज लूटें तो लूटन दे। मुझे.....

प्रभु की ध्यान करने की लगी दिल में लगन मेरे।
प्रीत संसार विषयों से अगर छूटे तो छूटन दे॥ मुझे.....

धरी सिर पाप की मटकी, मेरे गुरुदेव ने झटकी।
वो ब्रह्मानन्द ने पटकी, अगर फूटै तो फूटन दे॥ मुझे.....

मानसिक योग में भक्त गुरु के बाहरी स्वरूप का सहारा लेता है। जैसे निम्न शब्द में भक्त आर्त्त होकर भगवान् से प्रार्थना कर रहा है-

तेरा मैं दीदार दीवाना, घड़ी-घड़ी तुझे देखा चाहूं सुन सतगुरु रहमाना।

1. **हुआ अलमस्त खबर नहीं तन की पीया प्रेम का प्याला।**
   खड़ा रहूं तो गिर-गिर पड़ता, तेरी राह मतवाला। तेरा मैं.....
2. **खड़ा रहूं दरबार तुम्हारे, मैं घर का बन्दी जागा।**
   नेकी की अब लेओ शरण में, गले में पहर रसाला॥ तेरा मैं.....
3. **काजी और नवाज न जानू, ना जानू धर्मराजा।**
   चांद शिखरवा दिल से बिसरे, चांदन से दिल खोजा॥ तेरा मैं.....
4. **कहे मलूख अब काजा न करिए, दिलबर से दिल लाया।**
   मैं तो साहिब हिए मैं देखा, मुर्शिद पूरा पाया॥ तेरा मैं.....

कबीर शब्द

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या।
रहें आजाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या॥
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर बदर फिरते।
हमारा यार है हम में, हमन को इन्तजारी क्या॥
खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सिर पटकती है।

हमन गुरु नाम सच्चा है, हमन दुनियां से यारी क्या?
न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़े पियारे से।
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या?
कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या?

ये सब मानसिक योग के शब्द हैं। इनमें प्रेम व श्रद्धा साथ है। कर्मयोग में योगी अपने कर्म में इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे अपने काम के सिवाय किसी और चीज का ख्याल ही नहीं रहता है तथा और कोई विचार उसके मन में नहीं उठता है। इस अभ्यास से उसका मन एकाग्र हो जाता है और मन की एकाग्रता से उसे अपने कार्य में सफलता व योग्यता मिलती है। यह नृत्य कला, मूर्ति कला, चित्त कला, काव्य कला आदि सब कर्मयोग के नमूने हैं। गीता में इसे '**योगः कर्मसु कौशलम्**' कहा है। यह कर्मयोग बहुत आसान है। इस कर्मयोग को ठीक समझकर, मन को एकाग्रता से शक्तिशाली बनाकर इस लोक को सुन्दर बनाकर परलोक का साधन बहुत आसानी से बनाया जा सकता है। इसे ध्यान योग की प्रथम सीढ़ी कहा जा सकता है क्योंकि कर्म योग से मन को एकाग्र करने का अभ्यास हो जाता है और ध्यान योग में भी मन को पहले एकाग्र करना पड़ता है इससे ध्यान योग में बहुत आसानी होती है। भक्ति और प्रेम योग के अधिकारी तो बहुत कम मिलते हैं परन्तु कर्मयोग के सभी मनुष्य अधिकारी है। अतः मुख्य योग मानसिक है क्योंकि मन पर तरह-तरह के बढ़िया और घटिया संस्कार देखने, सुनने और पढ़ने से तथा जन्म-जन्मान्तरों के पड़े हुए हैं। वे योग से साफ हो जाते हैं और जब तक यह मन पवित्र नहीं होता तो आगे के दर्जे साफ नहीं होते। यदि मनुष्य का मन, वचन व कर्म पवित्र हो जाए तो इसका यह लोक और परलोक सब सुन्दर बन जाते हैं। केवल मन, वचन और कर्म को पवित्र करने की बात है। इस योग को सिखाने के लिए किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष की अत्यन्त आवश्यकता है। जैसे राधास्वामी वाणी में कहा है-

गुरु खोजो री जग में, दुर्लभ रत्न यही।

4. ज्ञान योग-इसे ध्यान योग या नाम योग भी कहते हैं। यह बुद्धि को विकसित व तीक्ष्ण बनाने का उत्तम योग है। इससे मनुष्य जीवन की

गहनतम समस्याओं को समझकर आन्तरिक ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए चित्त की एकाग्रता व विद्वत्ता की अत्यन्त आवश्यकता है। यह ज्ञान योग किसी ज्ञानी गुरु की संगत, दर्शन, सत्संग व सेवा से ही मिल सकता है। ज्ञानी वह होता है जिसे दुनिया के पूरे खेल का ज्ञान होता है और जो यह जानता है कि वह कहां से आया है और शरीर छोड़कर कहां जायेगा? वह साक्षी भाव से इस खेल को देखता रहता है। इसका साधन आत्मानन्द है जो अपने अन्दर सफेद रंग के प्रकाश का अनुभव करता है। इस साधन के लिए शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है। वैसे तो सभी योगों में ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। इस ध्यान योग से मनुष्य बाहरी कर्मकाण्ड जैसे तीर्थ, व्रत, मूर्तिपूजा इत्यादि सब छोड़ देता है। जैसे कबीर साहब ने एक शब्द में कहा है-

अब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई।

किरिया कर्म आचार में छोड़ा, छोड़ा तीर्थ का न्हाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही एक बौराना॥

ना मैं जानूं सेव बंदगी, ना मैं घंट बजाई।
ना मैं मूरत धरी सिंघासन, ना मैं पहुप चढ़ाई॥

जो यह मूरत मुख से बोलै, कर असनान न्हवाई।
पांच टका हौं देत ठठेरे, एकहिं हों लै आई॥

ना हरि रीझै जप तप कीन्है, ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोती छाड़े, ना पांचों के मारे॥

दया राखि धरम को पालै, जग से रहै उदासी।
अपना सा जीव सबका जानै, ताहि मिले अविनासी॥

सहै कुशब्द वाद को त्यागै, छाड़ै गर्व गुमाना।
सतनाम ताहि को मिलि है, कहै कबीर सुजाना॥

5. आनन्द योग-यह योग की वह पद्धति है जिसे सतपुरुष राधास्वामी दयाल ने सिखाया। इस योग के बहुत से नाम रखे हुए हैं। जैसे सुरत शब्द योग,

नाद योग, अनहद योग, उलटा नाम, प्रणव, उद्गीत इत्यादि। यह सब एक ही उद्देश्य को प्रकट करते हैं। यह अपने साधकों में शब्द अथवा नाद के साधन द्वारा आनन्द प्राप्त करने का योग है। लगभग सभी सन्तों का इसी योग का साधन रहा है और उन्होंने इसी की बड़ाई की है। यह सबसे अधिक सुगम, पवित्र, अहानिकारक, सुखसाध्य व सर्वोपरि है। इसमें सुरत को शब्द के साथ मिलाना पड़ता है। यानी शब्द ही ब्रह्म है। यह योग पुरुष, स्त्री, युवा, बूढ़ा कोई भी किसी भी समय, किसी भी स्थान पर तथा किसी भी परिस्थिति में बहुत आसानी से कर सकता है। यह साधन ऊंचे लोकों में आत्म (सुरत) के ऊंचे चढ़ने में सहायता देता है। इस योग में मुख्य बात अनुभव की है। अन्य योग तो इस मन को साफ करने के लिए है क्योंकि इस पर बहुत ही घटिया संस्कारों का ढेर जमा हुआ है। ये योग से साफ हो जाते हैं। जैसे नीचे चार श्रेणियां बताई हैं–

उत्तमा सहजावस्था, मध्यमा ध्यान धारणा।
अधमा तीर्थयात्रा मूर्तिपूजा चाधमाधमा॥

उत्तमा अवस्था में सहज ही बिना किसी प्रयास के शब्द का अनुभव होता रहता है। मध्यमा अवस्था में ध्यान–धारणा से शब्द का अनुभव या शब्द व प्रकाश दोनों का अनुभव होता रहता है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीर्थ यात्रा करना अधमा स्थिति में आता है और मूर्तिपूजा करके अपने इष्ट के स्वरूप का अन्तर में दर्शन करना सबसे अधम व निकृष्ट श्रेणी में आता है।

ये सभी श्रेणियां अपने–अपने स्थान पर अतिसुन्दर हैं। जो आस–विश्वास लेकर इस मार्ग पर चल पड़ता है, वह एक दिन अपनी मंजिल पर अवश्य पहुंच जाता है।

यह योगसाधन की जितनी भी विधियां हैं जो अब भी प्रचलित हैं अपने–अपने स्थान पर सब ठीक है परन्तु जैसा कहा है–

साध हमारे सभी भले, अपनी–अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी सब में है सरमौर॥

इस आनन्द योग से मन के सब विकार शान्त हो जाते हैं तथा मन में समता आ जाती है। इसके साधन से सहज ही सुरत ऊपर की तरफ चढ़ाई करती जाती है। इसे सुरत को अपने निज घर जाने का आध्यात्मिक (हाई वे)

मुख्य रास्ता समझा जा सकता है। यह लिखने में ठीक नहीं आता है क्योंकि यह अनुभव का विषय है। आज के इस बौद्धिक प्राणी के लिए जो हर बात का प्रमाण चाहता है तो जो इसका अनुभव करते हैं वे ही इसका प्रमाण है या फिर वे स्वयं अपने जीवन में इसे अनुभव करके देख लें। इस आनन्द योग या सुरत शब्द योग के लिए राधा स्वामी वाणी का एक शब्द लिखता हूँ–

शब्द बिना सारा जग अन्धा, काटे कौन मोह का फन्दा।
शब्द ही सुरत शब्द ही चन्दा, शब्द कमावे मिले आनन्दा॥
ताते शब्द ही शब्द कमाओ, शब्द बिना कोई और न ध्यावो।
शब्द भेद तुम गुरु से पावो, फिर शब्द में जाय समाओ॥

योग की इस विधि की आदि सन्त कबीरदास जी गुरु नानकदेव जी, रैदास, दादू साहब, पलटू आदि सभी सन्तों ने चर्चा की है तथा राधास्वामी पन्थ के सभी सन्त सुरत–शब्द योग के इस साधन को ही परम शान्ति को इसी ही जीवन में अनुभव करने का सबसे मुख्य और अति सुगम साधन बताते हैं।

मैं खुद 1956 से लेकर आज तक यानी 50 साल से इसका अनुभव करता आ रहा हूँ। कुछ भी यत्न नहीं करना पड़ता है। सहज ही अपने आप होता रहता है। जैसे कहा है–

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माहि।
सुरत शब्द मेला भया, मुह की हाजत नाहि॥
शब्द शब्द बहुतक कहा, वह तो शब्द विदेह।
जीभा पर आवे नाहि, निरख परख कर ले॥
गुरु शब्द को कीजिए, बहुतक गुरु लबार।
अपने–अपने स्वाद को, ठोड़–ठोड़ बट मार॥

अत: यह योग विधि सन्त मत की है और राधास्वामी मत भी सन्त मत है। इन्होंने इस योगविधि को आधुनिक समय में सबसे आसान बताया है। मेरा धर्म के विषय में अनुभव है कि पूरी मनुष्य जाति का धर्म एक ही है। लोगों ने अज्ञान से इसे अलग–अलग मानकर पूरी मनुष्यता को अलग–अलग बांट रखा है और धर्म के नाम पर लड़ते–झगड़ते रहते हैं। अब समय बदल गया है। समझदार, बुद्धिमान् सज्जन मेरा साहित्य पढ़कर बात समझ लें कि–

1. परमात्मा पूरी मनुष्यता का एक ही है।

2. सभी मनुष्यों की आत्मा एक जैसी है।
3. सभी की आवश्यकता भी लगभग एक जैसी है।
4. सब धर्म सम्प्रदायों का उद्देश्य एक ही है, केवल वर्णन शैली में समय, भाषा और स्थान के अनुसार अन्तर है।

सब धर्म सम्प्रदायों को इकट्ठा करके अब धर्म का नाम हम 'मजहबे इन्सानियत' रखते हैं। यानी मानव धर्म या Religion of Humanity इस एक नाम के नीचे सभी दुनिया के धर्म-सम्प्रदाय आ जाते हैं। पहले सब इन्सान हैं और इन्सानों का धर्म एक है।

अब रही परमात्मा की शक्ल सुरत तो उसकी कोई शक्ल सुरत नहीं है। आप एक मान लो जिसको जो भी अच्छा लगे, जैसे राम कृष्ण, शिव, मोहम्मद, ईसा मसीह इत्यादि। परमात्मा हर इन्सान के अन्दर है। अगर उसका दर्शन करना चाहें तो किस अनुभवी महापुरुष से विधि सीख कर अपने अन्दर ध्यान योग से दर्शन कर सकते हैं। इस विषय में मेरा अनुभव यह है कि जब ध्यान योग से आप की खुदी में (सूरत) वहां पहुंचेगी तब आप उसी के अन्दर मिल जायेंगे। जैसे बूंद पानी में मिल जाती है बूंद रहती ही नहीं। यह अनुभव का विषय है। स्वयं करके देखा जा सकता है।

यह सुरत शब्द योग मनुष्य के मन को सब संस्कारों से मुक्त कर देता है। इस विषय में कबीर साहब के कुछ शब्द देखिए-

वारि जाऊं मैं सतगुरु के, मेरा किया भ्रम सब दूर।
चन्द चढ़ा कुल आलम देखें, मैं देखूं भ्रम दूर॥
हुआ प्रकाश आस गई दूजी, उगिया निरमल नूर।
माया मोह तिमिर सब नासा, पाया हाल हुजूर॥
विषय विकार लाट है जेता, जारि किया सब धूर।
पिया प्याला सुधि बुद्धि बिसरी, हो गया चकनाचूर॥
हुआ अमर मरै नहीं कबहुं, पाया जीवन मूर।
बन्धन कटा छुटिया जम से, किया दरस मंजूर॥
ममता गई भई उर समता, दुःख सुख डारा दूर।
समझे बने कहे नहीं आवै, भयो आनन्द भरपूर॥
कहें कबीर सुनो भाई साधो, बजिया निरमल तूर॥

शब्द-योग के विषय में कबीर का ही एक और शब्द-

दूर गवन तेरो हंसा हो, घर अगम अपारा।
नहीं वहां काया नहीं वहां माया, नहीं त्रिगुण पसारा॥
चार वर्ण वहां है नाहीं, नाहीं कुल व्यवहार।
नौ छः चौदह विद्या नाहीं, नाहीं वहां वेद विचार॥
जप तप संजम तीर्थ नाहिं, ना ही नियम आचार।
पांच तत्त्व नाहिं उत्पत्ति होई, सो परलय के पार॥
तीन देव न तेतीस कोटि, ना हो दस अवतार।
सोलह शंख के आगे होई, समरथ का दरबार॥
सेत सिंहासन आसन बैठे, जहां शब्द झंकार।
पुरुष रूप क्या बरनूं महिमा, तिन गति अपरम्पार॥
कोटि भानु की शोभा जिनकी, इक इक रोम उजार।
क्षर अक्षर दोनों से न्यारा, सोई नाम हमार॥
सार शब्द को लेकर आयो, मृत्यु लोक मंझार।
चार गुरु मिल थापल हो, जग के सोई काढन हार॥
उन कर बहियां पकड़ रहो तुम, हंसा उतरो पार।
जम्बू द्वीप के तुम सब हंसा, गह लो शब्द हमार॥
दास कबीरा अबकी देहल, निरगुन को टकसार॥

इसी प्रकार गुरु नानक देव जी की वाणी में सुरत शब्द योगी की विशेष चर्चा है-

शब्दे धरती शब्दे आकाश, शब्द ही शब्द भयो प्रकाश।
पांच शब्द धुनकार धुन, बाजे शब्द रसाल।
जैसे जल में कमल निरामल मुरगाई निशानिए।
सुरत शब्द भव सागर तरिए, नानक नाम बखानिए॥

इसी ही तरह पूरी गुरु वाणी सुरत शब्द योग से भरी हुई है। समाधि में जाने की तथा आत्मिक आनन्द लेने की और भी विधियां हो सकती हैं। परन्तु जहां तकम आत्मतत्त्व के अनुभव या अपने निज रूप के अनुभव की बात है उसके लिए यह सुरत शब्द योग इस समय में बहुत सीधा और आसान है।

किसी भी तरह शरीर व मन को कष्ट दिए बिना यह सबसे उत्तम विधि है। मैं स्वयं इस बात का प्रमाण हूँ और 1962 से इस आत्म-तत्त्व का अनुभवी हूं और तब से लेकर आज तक संसार के सब व्यवहारों को करता हुआ साक्षी भाव से परमात्मा की लीला का आनन्द लेता आ रहा हूँ। चाहता हूँ कि किसी का योग अभ्यास पूरा हो गया हो तो उसको सत्संग दे दूं। क्योंकि यहां एक बात ध्यान से समझने वाली है कि शब्द योग भी मंजिल नहीं है। जैसे कहा है-

सुरत शब्द दोऊं अनुभव रूपा।
तूं तो पड़ा भरम के कूपा॥

आगे कहा है-

योग मुक्ति से भरम न छूटे। जब लग अपना आपा न सूझे॥
कहें कबीर सोई सतगुरु पूरा। जो कोई समझे बूझे॥

इस मन को शुद्ध व पवित्र करने के लिए योग बहुत जरूरी है परन्तु इसके बाद किसी पूर्ण अनुभवी का सत्संग आवश्यक है। बाहर के गुरु के वचन से ही साधक मुक्त अवस्था में ठहर कर जीवन हल्का-फुल्का जी सकता है। फिर कोई साधन-अभ्यास की जरूरत नहीं रहती है। सहज ही अनुभूति बनी रहती है। सुरत अपने आप ऊपर को खिंची रहती है और साक्षी भाव से परमात्मा की लीला को देखकर आनन्द लेती रहती है। यह रहनी मुक्त अवस्था को प्राप्त किए हुए मनुष्य की है। अपने अनुभव के आधार पर मैंने ऐसा समझा है। किसी भाई ने कोई और मुक्त अवस्था अनुभव की हो तो मुझे मालूम नहीं है। यह मैं शरीर में रहते हुए इस स्थिति का अनुभव कर रहा हूं। शरीर छोड़ने के बाद क्या गुजरे, कुछ कह नहीं सकता हूं, क्योंकि जो कहूंगा वह अनुमान की बात होगी, अनुभव नहीं होगा।

योग साधना में इष्ट या आदर्श

योग साधना में लोग अपने भिन्न-भिन्न इष्ट रखते हैं। कोई किसी देवी का ध्यान करता है तो कोई राम, कृष्ण, शिव, हनुमान इत्यादि देवताओं का ध्यान करता है तो कोई अपने गुरुस्वरूप का ध्यान करता है। यह सब अपने-अपने स्थान पर उचित है क्योंकि इससे मन एकाग्र हो जाता है और इच्छा पूरी

हो जाती है परन्तु यह मंजिल नहीं है और कुछ लोग निराकार रूप में प्रकाश को इष्ट रखते हैं परन्तु सन्तों ने इस प्रकाश को गुरु के चरणस्वरूप माना है अत: यह पूर्ण इष्ट नहीं है। सन्तों के मतानुसार मुख्य इष्ट 'शब्द' है और यह शब्द भी भिन्न-भिन्न स्थानों के भिन्न-भिन्न हैं। मंजिल पर पहुंचने वाला सार शब्द है प्रकाश का मण्डल नीचे रह जाता है और यह प्रकाश भी उन्हीं के अनुभव में आयेगा जिनका मानसिक व शारीरिक ब्रह्मचर्य ठीक है। यह शब्द योग बहुत सहज है और आनन्दमय कोष से शुरू होता है। इसमें साधक की शारीरिक, मानसिक व आत्मिक उन्नति सहज में होती रहती है। यह साधन बहुत सहज का है। इसमें किसी भी प्रकार की हानि नहीं है। मनुष्य अपनी प्रकृति, अधिकार व संस्कार के अनुसार और ध्यान की एकाग्रता के अनुसार उसका अनुभव करता है। जैसे मुझे स्वयं 1956 में थोड़े ही समय में पण्डित फकीर चन्द जी महाराज की संगत से उस सारशब्द का अनुभव हो गया था जिसे मैं अब तक सहज में दुनियां के सब काम काज करते हुए जहां और जिस हालत में होता हूँ अनुभव करता रहता हूँ। कोई आसन बनाने या आंख, कान व जुबान बन्द करने की जरूरत नहीं। सत्संग देते हुए इस शब्द का सहज अनुभव करता रहता हूँ। दूसरा डॉ० कमला मेरे प्रति श्रद्धा विश्वास रखती है उसको शब्द और प्रकाश का अनुभव आसन लगाकर तथा आँख, कान, जुबान बन्द करके होता है। इस विधि को ध्यान धारणा कहा है। दो साध्वी ऐसी हैं कि वह अपने-अपने स्थानों पर ध्यान में बैठी हुई मेरा सत्संग सुनती हैं। एक साधवी कहती है कि जब वह ध्यान में बैठती है तो मैं (कप्तान लालचन्द) प्रकट होकर उसको बहुत ऊंचे सफेद रंग के प्रकाश में तैराता हूँ जबकि मैंने अभी तक प्रकाश का कोई अनुभव नहीं किया है। कहने का भाव यह है कि यह योग साधन के अनुभव साधक के मन की पवित्रता, विश्वास और एकाग्रता का ही फल है। जो हमारे प्राचीन ऋषि, मुनि व सन्त महापुरुष हैं उन्होंने अपने समय में अपने अनुभव, समझ व विवेक के आधार पर जो कुछ लिखा, वह उस समय के अनुसार ठीक था। राधा स्वामी योग जो उद्‌गीत व प्रणव के रूप में पहले भी था उसको शब्दयोग के नाम से बहुत ही आसान और सरल बताया है

जो इस बुद्धि विज्ञान के युग में योग की सबसे उत्तम विधि है। मैंने अपने पूरे जीवन में इसका अनुभव किया है और मेरे प्रति विश्वास रखने वाले सज्जन कर रहे हैं।

अन्त में मैं यही कहना चाहूंगा कि जो अध्यात्म विषय का योगसाधन करना चाहता है वह वक्त गुरु की शरण में जाए। जैसे राधास्वामी वाणी में कहा है-

गुरु तो पूरा खोज रे तेरे भले की कहूं।
शब्द रता गुरु खोज रे तेरे भले की कहूं॥

अत: अध्यात्मज्ञान के लिए वक्त गुरु यानी जीवित महापुरुष से विधि सीखकर ही उसकी देखरेख में साधन किया जाना अति आवश्यक है। जैसे कहा है-

बिन गुरु घट में राह न चलना।
राह में विघ्न अनेकन मिलना॥

प्यारे सज्जनों मैंने अभी तक किसी को नामदान नहीं दिया है। मैं सत्संग देता रहता हूँ। जिसका विश्वास बन जाता है उसके दुनिया के काम हो जाते हैं। कुछ लोग मेरे से प्रसाद बनवाकर ले जाते हैं और उनके विश्वास के अनुसार उनके काम हो जाते हैं। किन्हीं के अन्दर मेरा रूप जागते हुए, स्वप्न में व साधन में प्रकट होकर उनकी सहायता करता है। परन्तु सच्चाई यह है कि मुझे कुछ पता नहीं होता कि किसने मेरा ध्यान किया और मेरे रूप ने उसकी क्या सहायता की ? मैंने इसको यह समझा है कि मनुष्य के मन में बहुत शक्ति है। यदि उसका मन पवित्र है तो जो भी इष्ट का रूप प्रकट होकर कहेगा, वह सब सत्य होगा। यदि मन पवित्र नहीं और रूप प्रकट होकर कुछ कहे तो बात सत्य भी हो सकती है और गलत भी। यह सब उसके विश्वास, मन की पवित्रता तथा ध्यान की एकाग्रता पर आधारित है। अनुभवी गुरु ही मनुष्य का सही पथ प्रदर्शन कर सकता है। अत: अनुभवी गुरु की खोज करो और फिर सोच समझकर उसे पूर्ण ब्रह्म का अवतार मान लो। आपके सब काम स्वयं होते जायेंगे। मुख्य बात वक्त गुरु या जीवित गुरु की है। यह योग युक्ति सब गुरु की कृपा है।

इष्ट या आदर्श की भिन्नता

यह जो मैंने इष्ट का अनुभव किया यह सबका नहीं होगा। किसी हिन्दू का इष्ट राम, कृष्ण, देवी, देवता होगा तो किसी मुसलमान का मोहम्मद और ईसाई का ईशामसीह होगा परन्तु अन्तिम मंजिल पर पहुंचने के लिए सन्तों ने सार शब्द को इष्ट माना है। इस्लाम में इसे नूर और कलाम कहा गया है। ईसाइयों ने इसे शब्द कहा है। जैसे-"Word was with God" या "God was with word." शुरू में मनुष्य की प्रकृति व संस्कार के अनुसार मन की एकाग्रता के लिए सहारा दिया जाता है। सन्त लोग अपने विश्वासियों को अपने रूप का ध्यान बताते हैं। यह बाकी सहारों से अधिक उत्तम है परन्तु इसके लिए सन्त खुद मन, वचन व कर्म से पवित्र हो और अधिक समय खुद अपने निज रूप में रहता हो। यदि ऐसा नहीं है तो सन्त खुद सत्संगियों के अपवित्र मन के विचारों से गिर जायेगा और सत्संगियों को भी उनके ध्यान से हानि होगी। विश्वास की बात और है।

यह गुरु या मूर्ति का इष्ट साधक का मन बनाता है। परमात्मा की शक्ति अंश रूप में प्रत्येक मनुष्य के अन्तर है। जितना जिसका मन शुद्ध व पवित्र है उतना उसको अनुभव होगा। आवश्यकता मन को शुद्ध, पवित्र व निर्मल बनाने की है। पूर्ण वही है जिसने पूर्णता का इष्ट अपने अन्तर बना लिया है। प्राणी के भाव विचार में पूर्णता का संकल्प बैठ जाना ही समय पर उसे पूर्ण बना देता है तो प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण है परन्तु साधन अभ्यास अनिवार्य है और वह साधन केवल पूर्णता के इष्ट से प्रेम करते रहना है। सतगुरु इष्ट है पूर्णता का जितना उससे अन्तर में प्रेम करोगे उतना ही लाभ होगा।

जैसे मेरे गुरु महाराज फकीर चन्द जी ने कहा है-

ढूंढ उसको अपने अन्तर वह तो तेरे पास है।
वह न होशियारपुर में न वह रहता व्यास है।
न आगरे है न उसका डेरा न धरन न आकाश है।
दाता कह गए वह हर प्राणी की अपनी सच्ची आस है॥
सत्संग किसी कामिल का करके राज को लो तुम समझा।
वह यकीन करा देगा तुमको कि सब कुछ तुम्हारे पास है।

अज्ञानियों और बहमियों के लिए हूं मैं प्रकट हुआ।
कहता हूं अनुभव अपना यह अनुभव ही सुख राश है।
मन की चंचलताई से मित्रो, बात समझ आती नहीं।
इसको थिर करने के लिए सुमिरन भजन अभ्यास है॥

सन्तों का इष्ट यानी आदर्श शब्द और प्रकाश है और इस प्रकाश का अनुभव भी उन्हीं सज्जनों को होगा जिनका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य कायम है। योग साधना करने वाले सज्जनों को यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि उन्हें केवल सन्तान उत्पत्ति के लिए ही कामांग का भोग करना चाहिए। अपनी निजी स्वाद या आनन्द के लिए कभी ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो उनके दिमाग का सन्तुलन बिगड़ सकता है। दूसरा यह योगसाधन अपने गुरु की देख-रेख में ही करना चाहिए।

साधन की एक ही मुख्य बात है कि यदि साधक को योग साधन में आनन्द आता है तो उसका साधन ठीक है और यदि वह योग साधन में खींचातानी या जबरदस्ती करता है तो उसमें उसकी हानि हो सकती है। इसके लिए गुरु का परामर्श आवश्यक है। योग साधना में एक स्थान का अनुभव हो जाने पर साधक को आगे बढ़ना चाहिए। एक ही स्थान के अनुभव पर स्थिर नहीं रहना चाहिए। योग साधना में किसी दूसरे की नकल न करें। खुद का अनुभव ही अच्छा है। निज रूप का अनुभव हो जाने पर रहनी ऐसी हो जाती है। जैसे इस शब्द में कहा है-

जब अपने ही दिल में खुदाई है, काबा में सजदा कौन करे।

1. **तू बिजली गिरा मैं जल जाऊं, तेरा हूं तुझ में मिल जाऊं।**
हो मुझसे खता और तू बख्शे, ये रोज का झगड़ा कौन करे।
जब अपने.....

2. **जब उसकी रजा पर छोड़ दिया, आबाद करे, बर्बाद करे।**
जिसका था उसको सौंप दिया, दिल दे के तकाजा कौन करे॥
जब अपने.....

3. **तू सामने आ मैं सजदा करूं, फिर लुत्फ है सजदा करने का।**
तू और कहीं मन और कहीं, तेरे नाम का सजदा कौन करे॥
जब अपने.....

4. **पर्दो ही तलक सब सजदे है, सजदों ही तलक सब पर्दे है।**
जब पर्दा उठा तू आप हुआ, फिर आपकी पूजा कौन करे।
जब अपने.....

5. **जब दिल में ख्याली सनम आ बसा, फिर गैर की पूजा कौन करे ?**
जब अपने.....

योगसाधना के लिए आवश्यक उपदेश

1. **शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य**-मनुष्य की मानसिक अशान्ति का सबसे बड़ा कारण विषय विकार का जीवन है। जो स्त्री-पुरुष शरीर व मन से अत्यधिक विषय विकार का ध्यान या भोग करते रहते हैं उनमें मानसिक और शारीरिक अशान्ति का आना अनिवार्य है। विषय विकार का अर्थ यहां केवल कामांग ही नहीं है। अपितु हर प्रकार की प्रबल इच्छा भी इसमें शामिल है। जैसे-

काम-काम सब कोई कहे, काम न चीन्हे कोय।
जेती मन की कामना, काम कहावे सोय॥

अशुभ या अनुचित इच्छायें, स्त्री संभोग के विचार और वीर्य को अधिक नष्ट करना मनुष्य के जीवन को विनाश के कगार पर पहुंचा देता है। इससे मनुष्य का स्वभाच चिड़चिड़ा हो जाता है उसे बात-बात पर क्रोध आता है और वह मानसिक रोगी हो जाता है। इसके लिए गृहस्थ त्याग की आवश्यकता नहीं है अपितु किसी अनुभवी महापुरुष का सत्संग अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य पालन में सादा भोजन, सादा रहन-सहन, सन्तों का सत्संग व धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन बहुत सहायता करते हैं।

2. **शारीरिक स्वास्थ्य**- शरीर का स्वस्थ रहना ही शारीरिक सुख है। योगी का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होना जरूरी है ताकि दुनिया की सब चुनौतियों के बीच अपना दैनिक कार्य करते हुए वह अपना मन एकाग्र कर सके। भोजन में अनियमितता व प्रतिकूल भोजन से स्वास्थ्य खराब हो जाता है। अत: स्वाद के लिए न खाओ अपितु जीवित रहने के लिए खाओ। खाने के लिए मत जीओ। आहार से न केवल मन और बुद्धि की बनावट होती है अपितु

इससे सारा शरीर बनता है और इसका प्रभाव मनुष्य के विचार, भाव और संस्कार पर भी पड़ता है।

जो मनुष्य जैसा भोजन करता है उसकी बुद्धि और मन भी वैसे ही बन जाते हैं। अत: जीवन में आहार का बहुत महत्त्व है। जैसे कहा है–**'जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन।'** इसलिए भोजन सात्विक, हल्का व साधारण होना चाहिए जो आसानी से पच सके। अधिक गरिष्ट, देर से पचने वाला, बासी व हानिकारक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। जहां तक हो सके भूख से कम खाना चाहिए क्योंकि अधिकता के साथ पेट भरकर खाना अभ्यास में बाधक होता है। मांस व नशे वाले पदार्थों का त्याग करना चाहिए। भोजन को पचाने के लिए और शरीर को स्वस्थ रखने के लिए कुछ न कुछ शारीरिक परिश्रम या व्यायाम, प्राणायाम इत्यादि अपनी प्रकृति, शक्ति व स्थिति के अनुसार करते रहना चाहिए। जो मनुष्य शरीर से स्वस्थ नहीं है वह न तो दैनिक कार्यों को भली प्रकार कर सकते हैं और न अपना मानसिक सन्तुलन ठीक रख सकते हैं और न ही अध्यात्म में आगे बढ़ सकते हैं।

3. मन की एकाग्रता– जहां तक हो सके मन को किसी न किसी काम में लगाए रखना चाहिए क्योंकि आदमी का मन बहुत चंचल है और वह व्यर्थ की बातें अधिक सोचता है। काम में मन को लगा देने से मन चंचल नहीं रहता और वह अनावश्यक व गन्दे विचारों से बचा रहता है। इस संसार के किसी भी कार्य में मन की एकाग्रता के बिना सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती है। जो प्राणी अपने सांसारिक व्यवहार में कार्य करते समय मन की एकाग्रता को प्राप्त नहीं कर सकता है वह कभी जीवन में सफलता व प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सकता है और न ही वह अपने अन्तर में ध्यान साधना में ठहर सकता है। सांसारिक व्यवहार करते समय जो मन को एकाग्र करके संसार को, शरीर को अथवा अन्य विचारों को नहीं भूल सकता है वह भला आन्तरिक योगसाधन में कैसे ठहर सकता है ? इसलिए ध्यानपूर्वक सांसारिक व्यवहार को करना प्रथम सीढ़ी है। इस कर्म से प्रसन्नता व सफलता प्राप्त होगी। इस मन को एकाग्र व मजबूत करने के लिए ही भक्ति योग, कर्म योग व प्रेम योग के साधन बताए गए हैं। इसका अभ्यास करके मन को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिए

क्योंकि इस मन की एकाग्रता से ही मनानन्द, सांसारिक सफलता व इच्छा शक्ति के बढ़ जाने से सिद्धियां मिलती हैं। इस मानसिक योग में मन को गुरु के स्वरूप का सहारा देकर अजपा जाप, सुमरिण, ध्यान, भजन से एकाग्र किया जाता है। इसे बाहर के गुरु के स्थूल रूप व अन्दर सूक्ष्म रूप के साथ सहारा लेकर एकाग्र किया जाता है। मुझे इस मन सम्बन्धी कोई कठिनाई नहीं हुई क्योंकि मेरे मन पर इस जन्म में धर्म–कर्म का कोई संस्कार नहीं था। उम्र छोटी थी। सूबेदार का पद मिला हुआ था जो मेरे लिए बहुत बड़ी बात थी। मैं 1939 से 1945 के विश्व युद्ध में सेना में नौकर हो गया था और तीन माह की शिक्षा के बाद छोटा अधिकारी पद मिल गया और आठ महीनों के बाद उससे बड़ा पद। यानी बहुत जल्दी योग्यता से अधिक मिल गया था। कहने का भाव यह है कि सांसारिक सफलता के लिए मैं (गीफटेड) भाग्यशाली था और यही बात अध्यात्मज्ञान की समझ लें। मैं 1956 में होशियारपुर में 18 रेलवे मण्डी में परम सन्त पण्डित फकीर चन्द जी के घर पर गया और कुछ बातचीत के बाद वह सहज समाधि में बैठ गए और मैं उनको परमात्मा का रूप मानकर बैठा ही था कि अचानक ही वह नाम जिसकी शास्त्रों और धर्म कर्म में बहुत चर्चा है, सहज ही मेरी खोपड़ी के अगले भाग में जहां बच्चे का तालवा टीप–टीप करता है खिंचाव होकर (Unbreakable sound) अनहद शब्द के रूप में अनुभव हुआ और उस दिन से दुनियां के हर काम को करते हुए, हर स्थान व हर समय पर उसे अनुभव करता आ रहा हूँ। इसलिए मुझे नीचे के साधन करने की जरूरत ही नहीं हुई। परन्तु यह घटना सबके साथ नहीं घट सकती है इसलिए किसी की नकल नहीं करनी चाहिए। जैसे गुरु बताए वैसे ही साधन करना चाहिए।

4. घर में शान्ति–जहां तक हो सके घरेलु शान्ति को बनाए रखो। घर में बड़ों का सम्मान व आपस में प्रेमभाव रखो। यदि घर में कोई सख्त मिजाज का है तो उसे सहन करो और छोटे बन जाओ। बराबर की टक्कर मत लो। सहनशीलता सबसे बड़ा तप है। घर की परिस्थितियों और समय की आवश्यकताओं के अनुसार काम करो। जीवन की आवश्यकताएं सीमित रखो। आमदनी से अधिक खर्चा मत करो। फिजूलखर्ची से बचो, जितनी चादर हो उतने ही पैर फैलाओ। लोक–लाज के प्रभाव में न आओ। भूलकर

भी किसी का दिल न दुखाओ और सबसे मीठा बोलो। कहने का भाव यह है कि किसी भी तरह घर की अनुकूलता व शान्ति को बनाए रखो। यदि किसी कारण परिस्थितियां व हालात अनुकूल न हों तो अलग हो जाओ या दूसरे आदमी को अलग कर दो ताकि घर में शान्ति बनी रहे।

5. इष्ट पर पूर्ण विश्वास- अपने इष्ट के प्रति पूर्ण श्रद्धा व विश्वास रखो। उसे पूर्ण ब्रह्म का अवतार मानो। उसके वचनों पर भरोसा रखो और उनके मतानुसार पालन करो। गुरु के वचन को मानना और उस पर अमल करना ही सच्चा प्रेम व भक्ति है। जैसे मीरा बाई को पूर्ण विश्वास था कि ठाकुर का प्रसाद अमृत होता है इसलिए वह जहर को भी अमृत समझ कर पान कर गई और उसका कोई बुरा प्रभाव उस पर नहीं पड़ा। इसी प्रकार मेरे प्रसाद से बहुत लोगों के सांसारिक काम ठीक हो जाते हैं। परन्तु मुझे इसका कोई ज्ञान नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि विश्वास का फल मिलता है। इसलिए जहां आपका विश्वास बने उस गुरु का सहारा लो और उस पर पूर्ण विश्वास रखो। इष्ट की मूर्ति अपने अन्तर प्रकट करना सीखो जिससे तुम्हारा मन अशान्ति, भ्रान्ति व भटकन से बच जाए। जब तक मनुष्य पूर्ण अनुभवी गुरु से पूर्ण समझ या ज्ञान लेकर उसे अपने जीवन में अमल नहीं करता तब तक वह सुख शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता और यह ज्ञान मनुष्य को किसी देवी-देवता या मूर्ति से नहीं मिल सकता है। यह ज्ञान समय के अनुसार जीवित गुरु जिसे जीवन के हर क्षेत्र का अनुभव है वही दे सकता है। ऐसा पूर्ण अनुभवी गुरु शिष्य की भटकन समाप्त करवाकर उसे अन्तर में ही ठहरा देता है और उसे यह विश्वास दिला देता है कि वह सर्वाधार कुल हर समय उसके साथ है। इसलिए गुरु की मुख्यता सर्वश्रेष्ठ है। कहा है-

घर में घर दिखलाय दे।
सो सतगुरु पुरुष सुजान॥

6. धार्मिक भेदभाव से दूर रहना-मनुष्य को इस धार्मिक विरोध और पक्षपात से बचना चाहिए। सभी धर्मों का उद्देश्य एक ही है, केवल वर्णन शैली भिन्न-भिन्न है। मनुष्य एक विशेष सम्प्रदाय में आकर अज्ञान से दूसरों से घृणा व नफरत करता है। धर्म का मुख्य उद्देश्य गुरु से सच्चाई जानकर अपने अन्तर ठहरना है। वह मालिक एक है जो अंश रूप में हर प्राणी में मौजूद है।

मनुष्य अज्ञानतावश कभी उसे मन्दिर में ढूंढता है, कभी मस्जिद में, कभी गुरुद्वारे में में तो कभी चर्च में और इसी अज्ञानता के कारण एक सम्प्रदाय का व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय से ईर्ष्या करता है। अत: गुरु की शरण में जाकर अपने आपको जानने की कोशिश करो व प्रसन्नता का जीवन व्यतीत करो और उन धर्म व पन्थों के जाल से निकलो और इसके लिए मेरी सभी महात्माओं से भी यही प्रार्थना है कि वे अपने सत्संगों में जीवों को सच्चाई बताएं व उन्हें भटकन से बचाएं। मेरे गुरु महाराज पं० फकीरचन्द जी ने भी इसके लिए ऐसे विचार प्रकट किए हैं-

करके हौंसला हाथ बांधकर करता हूं इल्तजा।
संसार के महात्माओं आओ तुम एक राह॥
सुरत शब्द योग असली घर का साधन दोस्तो।
इसके साथ इन्सान बनना भी लाजिम है दोस्तो॥

इसके अतिरिक्त योग साधना करने वालों के लिए कम बोलना, अच्छा सोचना, हर समय किसी काम में लगे रहना, हमेशा प्रसन्न रहना, प्रात:काल उठकर प्रतिदिन अभ्यास करना, सत्संग सुनना व धार्मिक पुस्तकों का पढ़ना इत्यादि भी आवश्यक है।

योगविधियों का सार और मंजिल

अध्यात्मज्ञान की जितनी भी योग विधियां महापुरुषों ने अपने-अपने अनुभव के आधार पर बताई हैं, वे सब उनकी प्रकृति, मन की एकाग्रता व समय के अनुसार ठीक रहती हैं। हम किसी के अनुभव का खण्डन नहीं कर सकते हैं। जो सज्जन दूसरों के अनुभवों और योगविधियों का खण्डन करते हैं उन सज्जनों में खुद में कमी होती है। अपना अनुभव तो हम बता सकते हैं और जिस विधि का प्रयोग करके अनुभव किया हो, वह बता सकते हैं परन्तु दूसरों पर अंगूली उठाना मनुष्य की खुद की मजबूरी समझ लो। जैसे कहा है-

जब न थी अपने हाल की खबर, रहे देखते औरों के एबो हूनर।
जब गई अपने गुनाहों पर नजर, तो निगाहों में कोई बुरा न रहा॥

धर्म कर्म की योगविधियों से मन, वचन व कर्म पवित्र हो जाते हैं और

उनकी मंजिल यही है कि मनुष्य को अपना ज्ञान हो जाता है कि वह क्या है ? कहां से आया है ? क्या करता है और क्यों ऐसा करता है ? अर्थात् मनुष्य में जो बोलता है, वह क्या है ? परमात्मा वास्तव में क्या है ? यह जान लेना ही धर्म-कर्म का सार है। यदि मनुष्य अपने स्वयं का अनुभव कर ले तो फिर कोई प्रश्न ही नहीं रहता है। इस अनुभव के बाद वह साधन-अभ्यास सब छोड़ देता है और एक मुक्त अवस्था में साक्षी भाव से परमात्मा की लीला देखकर उसकी शरणागत होकर जीवन जीता है। जैसे-

दृष्टि ऊंची करे जो प्राणी, सार समझ में आए।
सार पाय शरणागत आवे, आवागमन नसाए॥

ज्ञानी व जीवित मुक्त पुरुष धर्म कर्म करके परमात्मा की खोज करने वाले और बहुत यत्न करने वालों को योग युक्ति से परमात्मा कहाँ है। यह आसान विधि इस तरह बताते हैं-

शब्द

पानी में मीन पियासी, मोहे सुन-सुन आवे हांसी।
आत्मज्ञान बिना नर भटके, कोई मथुरा कोई काशी।
जैसे मृग नाभ कस्तूरी, बन-बन फिरत उदासी॥ पानी में.....

जल विच कमल कमल विच कलियां, ता पर भंवन निवासी।
सो मन बस कर लोक भया, सब जपी तपी संन्यासी॥ पानी में....

जाको ध्यान धरे नित हरिहर, मुनि जन सहस्त्र अट्ठासी।
सो तेरे घर माहि विराजे, परम पुरुष अविनाशी॥ पानी में.....

है हाजिर तोहे दूर बतावे, दूर की बात निरासी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, गुरु बिन भरम न जासी॥ पानी में....

कबीर साहब जो अपने समय के ज्ञानी पुरुष थे और जीवित मुक्त अवस्था के अनुभव में थे, वह भक्तों, योगियों तथा परमात्मा की खोज करने वालों को इस शब्द में बता रहे हैं कि जैसे मछली जल में रहती है और फिर भी वह प्यासी है तो यही हाल मनुष्य का है। वह परम पुरुष परमात्मा मनुष्य के अन्तर है जो सब ऋद्धि-सिद्धियों व सुख-शान्ति का भण्डार है और मनुष्य

उसकी तलाश में मन्दिरों, तीर्थस्थलों व गुरुओं के आश्रमों में भटकता फिर रहा है। जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी होती है उसको उसकी खुशबू आती है तो वह समझता है कि झाड़ियों से खुशबू आ रही है और वह उन झाड़ियों को सूंघता फिरता है। इसी प्रकार मनुष्य आत्मज्ञान के बिना जगह-जगह भटकता फिरता है। जैसे जल के अन्दर कमल है, कमल में कलियां हैं और उन पर भंवरे मस्त होकर मंडरा रहे हैं। ऐसे ही यह मनुष्य संसार की वस्तुओं पर अपना मन लगा रहा है और कुछ सज्जन मन को वश में करके अपने अन्तर तरह-तरह के चमत्कार और लीला को देखकर उसमें मस्त हैं और उसी को सच मान रहे हैं जो वास्तव में है नहीं, भासता है। यानी यह माया है। जपी, तपी और संन्यासी अन्तर की माया में मस्त है।

आगे कहा है जिसका ध्यान हरि-हर यानी ब्रह्मा, विष्णु, महेश करते हैं और अट्ठासी हजार मुनि करते हैं वह परम पुरुष अविनाशी हर घट के अन्तर विराजमान हैं। यानि वह मालिक है तो अन्तर में और उसे बाहर बताया जा रहा है, यह बात निराशा की व अज्ञानता की है। इसलिए ज्ञानी या मुक्त पुरुष मनुष्य को चेतावनी दे रहा है कि तू उस मालिक की खोज में बाहर मत भटक और न अन्तर ध्यान में मस्त हो। अपितु उसका अनुभव कर और अनुभव के बाद जब बुद्धि निश्चयात्मक बन जाए तब हर समय साक्षी भाव से उसकी लीला या खेल को देखकर आनन्दमय जीवन व्यतीत करें। कबीर साहब का एक और शब्द पढ़ें जो ज्ञानी व मुक्त पुरुष की रहनी पर है-

भाई सो ही सतगुरु सन्त कहावे जो नैनन अलख लखावे।
डोलत डिगै न बोलत बिसरै, जब उपदेश दृढावै।
प्राण पूज्य किरिया ते न्यारा, सहज समाधि सिखावै॥
द्वार न रूंधे पवन न रोके, न हिं अनहद उरझावै।
यह मन जाय जहां लग जब ही, परमात्म दरसावै॥
कर्म करे निकर्म रहे जो, ऐसी जुगत लखावै।
सदा विलास त्रास नाहि मन में, भोग में जोग जगावै॥
धरती त्याग आकाश हूँ त्यागै, अधर मढ़ैया छावै।
सुन्न शिखर की सार सिला पर, आसन अचल जमावै॥
भीतर रहा सो बाहर देखे, दूजा दृष्टि न आवै।
कहत कबीर बसा है हंसा, आवागमन मिटावै॥

इस शब्द में एक ज्ञानी पुरुष की रहनी बताई है। वह उस जीव को जो उसकी शरण में जाता है उसे उस अलख रूपी परमात्मा को जो आंखों से लखा (देखा) नहीं जाता। अपने अन्तर में लखने की सहज विधि बता देता है और सहज समाधि लिखा देता है और फिर जब वह अन्तर में ठहर जाता है और उसे ज्ञान हो जाता है तो फिर वह हर समय उसके साथ रहता है जो न चलते-फिरते भूलता है और न बोलने से बिसरता है। फिर उसे ध्यान-साधना के लिए न आंख, कान, मुंह बन्द करने की आवश्यकता है और न ही प्राणायाम के द्वारा श्वांसों को रोकने की जरूरत है और न ही वह अन्तर में अनहद धुन में उलझता है। फिर तो जहां-जहां उसका यह मन जाता है, वह सब उसे परमात्मा का खेल नजर आता है। वह दुनिया के सब कर्म करते हुए भी कर्ता का भाव नहीं रखता और हर समय खुशी आनन्द का अनुभव करता है तथा मन में कभी उदासी या निराशा का भाव नहीं लाता। जो भी भोग भोगता है यानी खाना, पीना, देखना, पहनना सबमें परमात्मा की ही कृपा समझता है। साधन ऐसा कि इस शरीर को छोड़कर अन्तर की सूक्ष्म लीला को भी माया समझकर त्याग देता है और नाम की धारा का अनुभव करता है। उसका हर समय आत्मतत्त्व यानी सार शब्द का अनुभव बना रहता है। ऐसा हंस जब शरीर सदा के लिए त्यागता है तो यह बून्द रूपी आत्मतत्त्व उस समुद्र रूपी परमात्मा में सदा के लिए लीन हो जाता है और वह आवागमन से सदा के लिए छूट जाता है। यह ज्ञान योग में रहने वाले योगी की रहनी है।

कबीर साहब का एक ओर शब्द ज्ञान पर है जिसमें बताया गया है कि वह मालिक सुरत रूप में हर मनुष्य के अन्तर है। बात केवल अपने आपको जानने की है। जब मनुष्य अनुभव करके अपने आपको जान लेता है तो फिर कोई योगसाधन करने की आवश्यकता नहीं रहती और यही धर्म की अन्तिम मंजिल है।

साधो एक आपु जग माहीं

दूजा कर्म भरम है करतरिम, ज्यों दर्पण में छाई॥
जल तरंग जिमि जल में उपजै, फिर जल मांहि रहाई।
काया झांई पांच तत्त्व की, बिनसे कहां समाई॥
या विधि सदा देह गति सब की, या विधि मन हि विचारो।
आपा होय न्याय करी न्यारो, परम तत्त्व निरवारो॥

सहजै रहै समाय सहज में, ना कछु आये न जाये।
धरै न ध्यान करै नहिं जप तप, राम रहीम न भावै॥
तीर्थ व्रत सकल परित्यागै, सुन्न डोरी नहिं लावै।
यह धोखा जब समझु परै तब, पूजै काहि पूजावै॥
जोग जुगत ते भरम न छूटे, जब लग आपा ना सूझै।
कहे कबीर सोई सतगुरु पूरा, जो कोई समझै बूझै॥

इस शब्द में यही ज्ञान बताया गया है कि एक परमात्मा सबमें है दूसरा जो भासता है वह सब मिथ्या भ्रम है। जैसे दर्पण में अपनी ही छाया भासती है और जैसे जल में लहरें उठती है और फिर वे थोड़ी देर बाद उसी में समा जाती हैं इसी प्रकार यह मनुष्य देह पांच तत्त्वों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश) से बना है और नष्ट होने पर ये पांचों तत्त्व अपने-अपने तत्त्व में मिल जाते हैं। जैसे कहा है-

बीज मध्ये ज्यों वृच्छा दरसे, वृच्छा मद्धे छाया।
परमात्म में आत्म तैसे, आतम मद्धे माया॥

जिस तरह बीज के अन्दर से वृक्ष बन जाता है और उस वृक्ष की छाया हो जाती है। ऐसे ही वह परम तत्त्व या अपना आपा (मैं) जो अपने आप में विचार करता है, वह मेरा जो आदि रूप है, वह बीज रूप परमात्मा है। उसमें से व्यक्तित्व बनता है और उस व्यक्तित्व से विचार या संकल्प उठते हैं। वह संकल्प माया है या छाया है। यह देह और मन की गति है। यह सब उस परम तत्त्व का खेल है। जब ज्ञान हो जाता है फिर कुछ करने धरने की बात नहीं। सहज ही अपने निज रूप में अनुभव बना रहता है। फिर वह यह सब साधन अभ्यास छोड़ देता है और सब में उस एक ही तत्त्व को देखता है। फिर वह किसकी पूजा करे और किसे पूजाएं? जिसको यह अनुभव होता है वही सतगुरु पूरा है।

मैंने 1956 में इस तत्त्व के अनुभव के बाद गुरु की आज्ञा से 1962 से सत्संग देने का काम शुरू कर दिया था और तब एक दिन मैंने अपने सतगुरु परम दयाल जी को अपने एक दिन की घटना का अनुभव बताया कि मैं सोफे पर बैठा हुआ सहज में सार शब्द का अनुभव कर रहा था। तब मैंने यह जानना चाहा कि यह शब्द को सुनने वाली क्या चीज है? तब सहज ही शब्द भी

गायब हो गया और सुनने वाला तत्त्व भी गायब हो गया। फिर कुछ समय के बाद बोध हुआ कि मैं शब्द सुन रहा हूँ और धीरे-धीरे मैं चेतनता में आ गया। इस घटना को सुनकर उन्होंने कहा कि मैंने अध्यात्मज्ञान का बहुत लम्बा सफर तय किया है और मेरे बहुत साथी थे। तेरा सफर बहुत छोटा है। तेरा योग पूरा हो गया है और तब उन्होंने इस पर एक छोटा सा सत्संग मुझे दे दिया और कहा कि जब तक प्रारब्ध है सहज में परमात्मा की यह लीला देखते रहो और साक्षी भाव से आनन्द लेते रहो। एक दिन सदा के लिए वहीं चले जाओगे जहां का यह अनुभव किया है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी बातें इस विषय पर बताई परन्तु अब सब याद नहीं। हां एक बात यह कही थी कि जब तक जीवन है प्रवृत्ति मार्ग पर सत्संग देते रहना। यानी इस लोक में सुख शान्ति व प्रसन्नता से कैसे जीवन गुजारा जाए। इसके बारे में बताते रहना और यह बात मैं अपने सत्संगों में बताता रहता हूँ।

मेरे गुरु परम दयाल जी ने अपना अनुभव अधिकतर निवृत्ति मार्ग पर बताया है। निवृत्ति मार्ग का अधिकारी करोड़ों में कोई एक होता है। उनका जीवन त्याग, तप का था। यह अध्यात्मज्ञान का अनुभव दो तरीकों से होता है। एक त्याग और तप से दूसरा भोग कर। मैंने भोग में योग का अनुभव किया है। पहले ही दिन जब दर्शन करने गया तो कुछ ही मिनटों में उन्होंने बहुत ऊंचा संतों के ज्ञान का अनुभव करा दिया जो आज भी उनकी अपार कृपा से सहज ही कर रहा हूं। इसे गुरु नानक देव जी ने इस प्रकार कहा है-

'नानक नदरी नदर निहाल।' इस प्रकार के और भी बहुत से उदाहरण शास्त्रों में आते हैं कि इस तत्त्वज्ञान के अनुभव में कोई देर लगने वाली बात नहीं है। जैसे राजा जनक की चर्चा आती है कि उन्हें बहुत जल्दी यह ज्ञान हो गया था। परन्तु यह सब खेल मौज का है। इसको प्रभु इच्छा कहो, गुरु कृपा कहो या कर्मगति कहो। वर्णन शैली भिन्न-भिन्न है, बात एक ही है। सुरत शब्द योग में इसे संक्षेप ऐसा कहा है।

'शब्द प्रकट' तब धरिया नाम, शब्द गुप्त तब हुआ अनाम॥

मेरी अपनी समझ व अनुभव के आधार पर यही योग विधियों का सार व मंजिल है। इसके अतिरिक्त कुछ और हो तो मुझे मालूम नहीं।

योगसाधना के आन्तरिक स्थान

योगसाधना के महापुरुषों ने अपने-अपने अनुभव के आधार पर भिन्न-भिन्न तरीके बताए हैं। प्राचीन काल में गुदा चक्र, इन्द्री चक्र व नाभि चक्र से कुण्डलिनी जागृत करके नाभि चक्र, हृदय चक्र व कण्ठ चक्र तक इस ध्यान को लाकर मस्तिष्क पर दोनों आंखों के बीच आज्ञा चक्र तक लाया जाता था जिस तक पहुंचते-पहुंचते जीवन ही बीत जाता था और आज भी बहुत से महापुरुष इसी पुरानी पद्धति का अनुशरण कर रहे हैं जबकि आज के युग में सन्तों ने ये सब नीचे के चक्र छोड़ कर सीधा आज्ञा चक्र से यह योगसाधन बताया है जो समय के अनुसार उचित है। योग साधना के प्रारम्भ का मुख्य केन्द्र बिन्दु यह आज्ञा चक्र है जो दोनों भौंओं के बीच और दोनों आंखों से थोड़ा ऊपर का स्थान है। इसे तीसरा तिल कहते हैं। यहां पर मन को एकाग्र करने के लिए कोई राम-राम, ॐ-ॐ, ॐ नमः शिवाय, अल्लाहू-अल्लाहू तो कोई गायत्री मन्त्र का अपजा जाप बतलाते हैं तो राधास्वामी मत वाले यहां पांच नाम का सुमिरन बताते हैं। इस अपजा जाप या सुमिरन का मुख्य उद्देश्य मन के अन्दर से उठने वाले तरह-तरह के विचारों को मिथ्या समझकर हटाना व मन को इकट्ठा करना है। राधास्वामी मत में इस पहले स्थान को सहस्राकार का नाम दिया है। माथे पर तीसरे तिल से थोड़ा ऊपर त्रिकुटी का स्थान है। यह ज्ञान का केन्द्र है। यहां पर मन को इकट्ठा करने के लिए इष्ट के रूप का ध्यान बताया जाता है। यहां पर ध्यान करने से इच्छा शक्ति बढ़ जाती है और मनुष्य इस स्थान पर ठहरकर इस लोक की जिस चीज के बारे में जानना चाहे, जान सकता है। वैज्ञानिकों ने इसी स्थान पर ठहर कर उन्नति की है क्योंकि किसी नई चीज के बारे में सोचते-सोचते जाने-अनजाने उनका यहां ध्यान केन्द्रित हो जाता है और उन्हें कोई सूझ-सूझती है यहां ॐ की ध्वनि व बादल की गड़गड़ाहट का शब्द सुनाई देता है। हिन्दू धर्म में इसे ॐ का स्थान कहा गया है। यहां लाल रंग का प्रकाश दिखाई देता है। अतः इस सांसारिक उन्नति को बढ़ाने व ऊपर आध्यात्मिक मंजिलों पर जाने का यह मुख्य केन्द्रबिन्दु है। क्योंकि मुख्य आशा और श्रद्धा के साथ जिस इच्छा को लेकर यहां जितना एकाग्र होगा उतना ही उसे अपनी आशा, श्रद्धा व एकाग्रता के अनुसार फल

प्राप्त होगा।

इसके बाद माथे के थोड़ा ऊपर सुन्न व महासुन्न का स्थान है। सुन्न का अर्थ है नशा। इस स्थान पर साधना करने वालों को कोई चिन्ता फिक्र नहीं रहता तथा देर तक उसमें मस्ती व नशे की अवस्था बनी रहती है। जिस तरह से लोग पान, सुपारी, शराब आदि नशीले पदार्थों के सेवन से आनन्द लेते हैं उसी प्रकार योग साधना करने वाले इस परमात्मा के नाम का नशा करते हैं और यह नशा अन्य नशों की अपेक्षा अधिक देर तक रहने वाला व हमेशा के लिए मस्ती, खुशी देने वाला है। यहां इसी की परछाई से इस स्थूल लोक की सब लीला हो रही है। पर मन काम नहीं करता है। दसवां द्वार भी इसे कहते हैं।

इससे ऊपर जहां माथे के बाल मिलते हैं, आत्म पद व सतलोक का स्थान है। यहां सफेद रंग का प्रकाश है व शब्द गूंजता है और यह प्रकाश रूपी आत्मा तुम ही हो। यह आनन्द का स्थान है। तो सहस्रदल कंवल (सहस्राकार) से लेकर सतलोक तक के जितने भी साधन हैं ये सब मन के मण्डल तक हैं क्योंकि इनमें मन साथ रहता है। यहां आत्मा की मिलौनी है जिसमें अन्दर प्रकाश व शब्द रूपी राम नाम की धार है।

ये सब साधन अपनी-अपनी जगह ठीक है परन्तु प्यारे पाठको! मैंने यह सब साधन नहीं किए। मेरा साधन गुरु कृपा से सतलोक से ऊपर मस्तिष्क में जहां बच्चे का तालवा होता है, वहां से शुरू हुआ जिसमें सहज में सीधा सार शब्द आ जाता है। यहां मन का मण्डल समाप्त हो जाता है। सन्तों ने इसे अपनी-अपनी भाषा में अलख, अगम व अनाम कहा है। अलख का अर्थ है जिसे इन आंखों से लखा न जा सके क्योंकि यह अनुभव का विषय है। आगे अगम का सफर है जहां केवल सहज शब्द गूंजता रहता है और उसका कोई अन्त नहीं आता। मुझे अगम के साधन का अन्त या किनारा 1962 में एक दिन क्लब में सोफा सेट पर बैठे हुए सहज में आ गया था। इस अवस्था का नाम सन्तों ने अनाम रखा हुआ है। जैसे-

शब्द प्रकट तब धरिया नाम,
शब्द गुप्त तब हुआ अनाम।
लखन हार ने लख लिया, जाको है गुरु ज्ञान॥
शब्द सुरत के अन्तरे, अलख पुरुष निर्वान॥

इसके आगे अध्यात्मज्ञान में कुछ कहने सुनने की बात नहीं है। प्राकृतिक नियम के अनुसार आप बातें करते हुए या वैसे ही बैठे या लेटे हुए जब गहरी नींद में चले जाते हो तो आप क्या बतायेंगे कि नींद में क्या हुआ? यह अनुभव हर मनुष्य का हर रोज का प्राकृतिक है और इसी प्रकार का अनुभव मनुष्य को योगसाधन के अभ्यास से करना है। अपने स्वयं का अनुभव ही अध्यात्म में सबसे बड़ी बात है। अब रहा परमात्मा का अनुभव। तो यह बून्द रूपी मनुष्य की सुरत उस समुद्र रूपी परमात्मा का क्या अनुभव करेगी? वह मालिक अपरम्पार है, बेअन्त है।

तुमरी गतमत तुम ही जानी, नानक दास सदा कुरबानी।

सभी सन्त सज्जन अपने स्वयं के अनुभव के बाद चुप हो गए और धर्म कर्म में जो योग, जप, तप, अभ्यास किया जाता है उसे छोड़कर परमात्मा की शरणागत हो गए। जैसे कहा है-

जो दीखे सो है नाहीं, जो है वह कहा न जाई।
सैना बैना जो कोई बूझे, गूंगे का गुड़ खाई॥
अलग-अलख क्या कहते हो, अलखहिं लखे न कोय।
अलग लखा जिन सब लखा, लखा अलख नहीं होय॥

मेरे योगसाधन की विधि

पाठकगण! मैंने जो यह योग की विधियां बताई हैं, यह सब ठीक हैं। जैसी मनुष्य की प्रकृति, संस्कार व अधिकार होते हैं, उसी के अनुसार पूर्ण अनुभवी महापुरुष अधिकारी शिष्य को बताता है। परन्तु मेरे साथ इस योग की एक निराली ही घटना घटी। मेरे बचपन से कोई धर्म कर्म के संस्कार नहीं थे। इस नाम के बारे में मैं बिल्कुल ही अनजान था। बस फौज की नौकरी के दौरान एक व्यास के सत्संगी से इस नाम का संस्कार मिला और मुझे उस दिन से यह लगन लग गई कि इस नाम या भजन को अवश्य जानना है और मैं इस नाम की प्राप्ति के लिए कई महापुरुषों से मिला लेकिन मेरी कही पर सन्तुष्टि नहीं हुई। अन्त में मेरा भाग्य मुझे वहां ले गया जहां मेरा काम बनना था। मैंने फौज में ही किसी सत्संगी से होशियारपुर वाले बाबा फकीरचन्द जी का नाम सुना हुआ

था। मैं सब जगह से निराश होकर अन्त में वहां होशियारपुर में 18 रेलवे मण्डी, बाबा फकीचन्द जी महाराज के घर पहुंचा। थोड़ी देर बातचीत के बाद उन्होंने अपने कमरे में रखी अपने गुरु महाराज महर्षि शिवव्रत लाल जी की मूर्ति की तरफ संकेत करके कहा कि यह महात्मा जब मनुष्य शरीर में थे तब मैंने उनको कुल मालिक मानकर इनके आदेशों का पालन किया। अब मैं जब ध्यान करता हूं तो परमात्मा का ही रूप बन जाता हूँ और जब शरीर में आता हूँ तो एक साधारण मनुष्य की तरह काम करता हूँ। अगर तुम इस मूर्ति को कुछ अपशब्द कह दो या कूड़ा करकट इस पर डाल दो तो यह तुम्हारा कोई नुकसान नहीं करेगी क्योंकि धर्म विश्वास का विषय है। मेरा विश्वास था कि यह साक्षात् परमात्मा का रूप है। मैंने जो इच्छा करी वह सब कुछ मिला और मेरी रक्षा होती रही। अब ध्यान की स्थिति में मैं स्वयं परमात्मा का ही रूप बन जाता हूँ।

इतना कहकर वह सहज समाधि में चले गए। तब मैंने सोचा अगर मानने का ही विषय है तो मैं इन्हीं को परमात्मा का रूप मान लेता हूँ और फिर मैं वहीं पर आंखें बन्द करके बैठ गया। मुझे कोई बैठने का आसन व साधन करने की विधि मालूम नहीं थी और फिर थोड़ी देर बाद ही मेरे मस्तिष्क के अगले भाग में जहां बच्चे के तालु का नरम स्थान होता है वहां कुछ हलचल सी होकर मेरा ध्यान ऊपर की ओर खिंच गया और एक विशेष अवर्णनीय आनन्द का अनुभव हुआ। तब मैंने महाराज जी के हुक्के की आवाज सुनी तो मैंने खड़े होकर उनको अपनी इस स्थिति के बारे में बताया। तब उन्होंने मुझे कहा कि इसी को धर्म में भजन कहते हैं और इसी अनुभव को नाम कहा जाता है। तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है। जब समय मिले जहां और जिस स्थान पर हो, अनुभव कर लिया करो और उस स्थान से लेकर आज तक मेरा यह सहज साधन बना रहता है। कुछ करने धरने की बात ही नहीं है।

मेरे इस अनुभव से स्पष्ट है कि यदि सतगुरु पूर्ण अनुभवी है और शिष्य को इस नाम को जानने की पूरी तड़फ है तो फिर देर लगने वाली कोई बात ही नहीं है। जैसे अनुभवी डॉक्टर रोग को देखते ही उसका इलाज कर देता है उसी प्रकार अनुभवी महापुरुष शिष्य की प्रकृति व संस्कार के अनुसार उसका काम बना देता है। लेकिन यह काम तभी बन सकता है जब शिष्य को अपने गुरु पर

पूर्ण विश्वास हो और वह उसके आदेशों का पूर्णतया पालन करे। अनुभवी सतगुरु जो तत्त्व से जुड़ा रहता है उसके सम्पर्क में यदि जिज्ञासु व सच्ची तड़फ वाला यदि कोई शिष्य आता है तो उसकी (Radiation) विकिरणधारा से यह काम तुरन्त बन जाता है। मैं इस बात का प्रमाण हूं क्योंकि मैं केवल इसी नाम को जानने की इच्छा से वहां गया था। गुरु महाराज जी की (Radiation) विकिरणधारा मेरे मन पर टकराई और सन्तों वाला नाम सहज ही खुल गया। इसी प्रकार मेरे सत्संग में बैठे गई सज्जन अपना ऐसा अनुभव बताते हैं। परन्तु आजकल अधिकतर महात्मा लोग अपने डेरे, आश्रम बनाने व शिष्यों की भीड़ जुटाने में लगे हैं और इधर शिष्य भी स्वार्थवश इच्छापूर्ति के लिए गुरुओं के पीछे लगे हुए हैं और न ही उन्हें कोई पूर्ण विश्वास होता है।

पूर्णकाम योगी या मुक्त पुरुष की दृष्टि

यह संसार जिसमें हम जी रहे हैं, परमात्मा की लीला का लोक है। इसको सन्तों ने अपनी वर्णन शैली में काल लोक कहा है जिसका अर्थ है गति और समय। यहां हर वस्तु, जीव-जन्तु, लोक-लोकान्तर गति में है। मनुष्य की सुरत अवगति से नीचे आती है और यहां आकर पूरा खेल खेलती है। शरीर, मन, आत्मा और सुरत, इन चार तत्त्वों से बने हुए मनुष्य में यह सुरत परमात्मा का एक छोटा सा अंश है और यहां यह सब खेल सुरत तत्त्व का है। मनुष्य के सब अंगों व कमलों को काम करने की गति इस सुरत से मिलती है। यानी सुरत इस मनुष्य जीवन में मुख्य है मनुष्य जीवन संस्कारों का है। सनातन धर्म में सोलह संस्कार बताए है जो गर्भाधान से शुरु होकर आखिरी संस्कार मृत्यु के 13 दिन में समाप्त होते हैं। मैंने इनका वर्णन अपनी पुस्तक 'मानव धर्म व अध्यात्मज्ञान' में किया है।

पहले जो योग की चर्चा की है उसका मुख्य उद्देश्य इस मनुष्य जीवन में जो सुरत तत्त्व है इसको जैसे यह ऊपर अवगति के स्थान से उतर कर नीचे इस लोक में आई है और यहां जो तरह-तरह के घटिया व बढ़िया संस्कार ग्रहण करके उनके जाल में उलझ गई है, योग-साधन करके इसको इन संस्कारों या कर्मों के जाल से निकालकर वापिस परमात्मा तत्त्व या अवगति में सदा के लिए मिलाना है।

पहले जो हठयोग शरीर को स्वस्थ रखने का है, करो। फिर मानसिक योग जो मन को स्वस्थ या मजबूत करने का है यदि जरूरत है तो वह करो। फिर आत्म योग जो आत्मा के आनन्द का है उसको यदि आवश्यक है तो साधो। तब आखिरी जो सन्तों का योग सुरत को आवागमन से छुटकारा दिलाने का है उस सुरत शब्द योग को साधो।

यह युग सन्तों के अवतार का है। यानी परमात्मा स्वयंसन्त रूप धर कर यहां आया है। वह मनुष्य को सुरत शब्द योग का साधन-अभ्यास सिखाकर जीव को इस काल लोक से सहज में साधन करके आवागमन से छुटकारा दिला देते हैं। जैसे कि इस शब्द में कहा है-

दरबार में प्यारे सतगुरु के, दुःख दर्द मिटाए जाते हैं।
दुनिया के सताए लोग यहां, सीने से लगाए जाते हैं॥
क्यों डरते हो ए जग वालो, इस दर पर शीश झुकाने से।
इस दर पर ए दुनिया वालो, सिर भेंट चढ़ाए जाते हैं॥
यह महफिल है मस्तानों की, मर्दानों की दीवानों की।
भर-भर के जाम हिफाजत के हर रोज पिलाए जाते हैं॥
इलजाम लगाने वालों पर इलजाम लगाए जाते हैं।
जिन-जिन के बुलावे आते हैं, बस वो ही बुलाए जाते हैं॥
इस दर पर ए भारतवासियों, अमृत ज्ञान पिलाए जाते हैं।
दयाल फकीर के मानवता मिशन के, पाठ पढ़ाए जाते हैं॥

गुरु के दरबार से और इस सुरत शब्द योग के साधन से यह आवागमन की बात मेरे अनुभव में आई है और अब मैं जीवन में यह अनुभव कर चुका हूँ कि मुझे शरीर छोड़ने पर कहां जाना है ? परन्तु शरीर छोड़ने पर क्या गुजरे यह बात कह नहीं सकता हूँ।

मैं ही नहीं आज तक जो महापुरुष शरीर छोड़ कर गए हैं, किसी ने वापिस आकर नहीं कहा कि वे कहां गए हैं ? और न ही अब जो गुरु पीर सन्त, बली, नबी, शरीर में हैं यह बता सकते हैं कि शरीर को सदा के लिए छोड़ने पर वे कहां जायेंगे ? यदि कोई कहेगा तो वह अनुमान से कह सकता है, अनुभव से नहीं।

फिरा न मुलके अदब से कोई कि।
पूछे मुसाफिरों मंजिल पर क्या गुजरी॥

उतते कोई न आइया, जासुं पूछु जाय।
इतते सब कोई जात है, भार लदाय लदाय॥

वैसे धर्म कर्म में यानी अध्यात्मज्ञान में भक्तों को जो साधन योग-विधियां बताई जाती हैं वे सब मनुष्य की प्रकृति और योग्यतानुसार ठीक हैं। परन्तु मैंने आपको सन्त मत के अनुसार सन्तों के आधुनिक सहज योग विधि पर विशेष प्रकाश डालने का यत्न किया है। सन्तों का मत इस सुरत रूपी तत्त्व को जो यहां काल और माया जाल में उलझी हुई है इसको वापिस अपने निज घर और देश का ज्ञान देकर वापिस जिस मार्ग से यहां आई है उसी मार्ग का भेद बताकर सहज, आसान आधुनिक विधि बताकर निज घर पहुंचाने का है। सुरत का निज घर क्या है नीचे शब्द में पढ़ें-

अवगति पार न पावे कोई। टेक।

अवगति नाम पुरुष को कहिये, अगम अगोचर वासा।
ताको भेद सन्त कोई जाने, जाकी सुरत समोई॥
अवगति अक्षर जग से न्यारा, जिभ्या कहा न जाई।
वेद कतेब पार नहीं पावे, भूल रहे सब कोई॥
अवगति पुरुष चराचर व्यापे, भेद न पावे कोई।
चार वेद में ब्रह्मा भूले, आदि नाम नहीं पाई॥
अवगति नाम की अद्‌भुत महिमा, सुरति निरति से पाई।
दास कबीर अमरपुर वासी, हंसा लोक पढ़ाई॥

इस अवगति नाम को दूसरी तरफ भी कबीर साहब ने बताया है। ज्ञान तो दे दिया परन्तु है रहस्य में जिसे केवल त्रिकुटी में साधन करने वाले साधु समझ सकते हैं। गृहस्थी का मन एकाग्र नहीं होता है अतः वे इन रहस्यमय शब्दों को समझ नहीं सकते हैं। विषय अनुभव का है फिर भी मैं बुद्धि के स्तर पर समझाने की कोशिश करता हूँ।

ऊपर अवगति (जहां गति नहीं है) नाम परम तत्त्व का है यानी (Super most element) यह पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चान्द, तारे व ऊपर से सब लोक-लोकान्तर सब गति में हैं। यहां पर कोई स्थान गतिरहित नहीं है। एक स्थान है जो गतिमय नहीं है, स्थिर है। उससे किरणें या धारें प्राकृतिक तौर पर

सहज निकलती रहती है। जिससे हजारों सूर्य, चाँद, लोक-लोकान्तर बनते रहते हैं और बिगड़ कर उसी में समाते रहते हैं। उसकी लीला अपरम्पार है। उससे जो धारें या किरणें निकलती हैं तो एक प्रकाश और शब्द का मण्डल बन जाता है जिसको सन्त सच्चाखण्ड या सतलोक कहते हैं। इस सतलोक से नीचे यह रचना जो हम देख रहे हैं बनती रहती है और बिगड़ती रहती है। ऊपर रहस्य की भाषा में कबीर साहब इस परम तत्त्व को पुरुष की संज्ञा देते हैं। इसी परम तत्त्व को कबीर साहब कहीं पर अपने शब्दों में अमरापुरी कहते हैं। दूसरे महात्माओं ने अपनी-अपनी वर्णन शैली में इसके भिन्न-भिन्न नाम रखे हैं। ऊपर शब्द में कहा है-**'ता को भेद सन्त कोई जाने जाकी सुरत समोई।'** यानी जिसकी सुरत साधन करते हुए उस परम तत्त्व में कुछ समय के लिए लीन होकर फिर प्राकृतिक तरीके से वापिस इस शरीर में आ जाती है, वही इसका अनुभव कर सकता है। सिवाय ज्ञानी पुरुष के इस अवगति पुरुष का भेद कोई नहीं जान सकता है। यह सब खेल जो यहां दिखाई दे रहा है, उसकी लीला है। कबीरदास शब्द के अन्त में कह रहे हैं कि मैं अमरपुर (अवगति) का वासी हूं और हंसों को वहां ले जाने के लिए आया हूँ।

इसी तरह का एक और शब्द नीचे पढ़ें-

जहां से आयो अमर वह देसवा॥ टेक॥
पानि न पौन न धरती अकसवा।
चाँद न सूर न रैन दिवसवा॥
बाम्हन छत्री न सूद्र बैसवा।
मुगल पठान न सैयद सेखवा॥
आदि जोति नहिं गौर गनेसवा।
ब्रह्मा विष्णु महेस न सेसवा॥
जोगी न जंगम मुनि दुरवेसवा।
आदि न अन्त न काल कलेसवा॥
दास कबीर ले आये संदेसवा।
सार शब्द गहि चलो वहि देसवा॥

ऊपर के इस शब्द में कबीर अपना यही संदेश देते हैं कि यह जो कुछ भी ऊपर बताया है वह कुछ नहीं है। बस अन्तर में उस सार शब्द को सुरत से

पकड़कर उस अमर लोक में चलो।

कहने का भाव यही है कि जहां से यह हमारी सुरत यहां इस लोक में खेलने के लिए आई है, सन्तों ने उसे अपनी-अपनी भाषा व शैली में भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं और सब बात रहस्य में हैं और इसे मन की एकाग्रता व योगसाधन के बगैर जाना नहीं जा सकता।

यह जितने भी योग बताए हैं यह सब शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा को समता से रखने के योग्य बनाने के लिए हैं।

पूज्य महात्मा सज्जनों ने इस लोक को काल का लोक कहा है और इस जीवन को दु:ख, तकलीफों का बताया है। हो सकता है उन्होंने दुख व कष्टमय जीवन जीया हो परन्तु आज के महात्मा सज्जनों से मैं मिलता हूं तो देखने में सब बहुत ठाठ का जीवन जी रहे हैं। कहने को मैंने भी कुछ पूज्य महात्माओं से सत्संगों में कहते सुना है कि काल के देश में दु:ख ही दु:ख है केवल दयाल देश में सुख है। जहां तक अध्यात्म विषय की मेरी समझ व अनुभव है यह शब्द जो मनुष्य को समझाने के लिए पूज्य महापुरुषों ने बताए हैं ठीक है। परन्तु हजारों करोड़ों में कोई एक ऐसा सज्जन होता है जिसको यहां वैराग्य हो जाता है और वह वापिस अपने निज घर जाने की आवश्यकता महसूस करता है। ऐसे मनुष्य को इस दुनिया में कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उसकी सुरत यहां खेल खेलकर थक जाती है या विराम हो जाती है। तब न घर, न धन, न स्त्री, न सन्तान, न किसी अन्य वस्तु में उसकी कोई रुचि होती है। ऐसे पुरुष को समझाने बुझाने के लिए महापुरुषों ने यह शब्द बताए होंगे। आज के मनुष्य को जो त्याग का मार्ग बताकर ज्ञान देने की विधि बताई जा रही है यह बात मेरे अनुभव में नहीं आई है क्योंकि आज के मनुष्य की समस्या कुछ और है। यह तो वह बात है कि बीमार के तकलीफ तो है पैर में और पट्टी बांधी जा रही है सिर पर।

ज्ञान देने की दो विधियां हैं। एक त्याग की और दूसरी भोग की। यह विधि पहले से चली आ रही है, कोई नई बात नहीं है। यह तो आजकल सत्संगों में लकीर पीटी जा रही है कि इच्छा की कोई हद नहीं है। जो इच्छा करोगे, भोगना पड़ेगा। बस जो परमात्मा देता है वह बहुत है। वह आपकी जरूरत के अनुसार अपने आप देगा। यह सत्संग आज की संगत के लिए नहीं

है। यह सत्संग करोड़ों में से किसी एक के लिए है जो सत्संग में हाजिर ही नहीं है। जो सत्संग में आते हैं, वह परमात्मा के दर्शन के लिए नहीं आते हैं। वे काल कर्म के मारे कोई शरीर से दु:खी है, कोई धन से तो कोई मन से। इनके लिए सत्संग प्रवृत्ति मार्ग का है। मैंने 1960 से गुरु आज्ञा से प्रवृत्ति मार्ग पर सत्संग देना शुरू किया था। जो केवल नाम के लिए ही सत्संग में आया, उसको सत्संग सुनते हुए ही जो वह चाहता था अनुभव हो गया तो क्या मेरे में कोई ऋद्धि-सिद्धि है ? नहीं जहां मांग है वह पूर्ति हो जाती है। जिसके मन में किसी वस्तु की तड़फ होती है उसे कुदरत पूरा कर देती है।

बाहर के गुरु का तो यही कर्त्तव्य है कि वह जीवों को उत्साहित करता रहे व आशावादी विचार देता रहे और उनकी प्रकृति व संस्कार के अनुसार उचित मार्गदर्शन करता रहे। जिसका संस्कार व अधिकार होता है और जिसमें सच्ची लगन व तड़फ होती है, वह धीरे-धीरे अपनी मंजिल पर पहुंच जाता है और उसे यह ज्ञान हो जाता है कि यह सारा खेल शरीर, मन, आत्मा, शब्द व प्रकाश का है यानी काल व माया का है। मेरा अपना रूप अवगति है। मैं परम तत्त्व का अंश हूं जो न जन्मता है न मरता है तब वह सुख दुख से परे मुक्त अवस्था में यहां के नियम, कानून व व्यवहार को मानते हुए सुख, शान्ति, प्रसन्नता, उमंग व बेफिकरी से अपना जीवन व्यतीत करता है। उसे किसी प्रकार का भय, चिन्ता, फिक्र नहीं रहती और यह अवस्था इस शरीर के रहते ही प्राप्त की जा सकती है। यही योग व अध्यात्मज्ञान का सार है।

''लोक सुखी परलोक सुहेले।''

''जाको दर्शन इत है, वाको दर्शन उत।
जाको दर्शन इत नहीं, वाको इत न उत॥''

''तन छूटे जीव मिलन कहतु है सो सब झूठी आसा।
अब हूँ मिला सो तबहुं मिलेगा नहीं तो जमपुर वासा॥''

मैं स्वयं 1962 से संसार की सब सुख सुविधाओं को भोगते हुए ऐसा सहज जीवन जी रहा हूं। आगे की कह नहीं सकता क्या गुजरे ?

अगम का भेद

गुरु ने दीन्हा भेद अगम का, सुरत चली तज देश भरम का।

बल पाया अब विरह मरम का, भटकन छूटा और दैरो हरम का।
बर्षन लागा मेघ करम का, संशय भागा जन्म मरण का॥
तोड़ दिया अब जाल निगम का, सुख पाया अब हम दम-दम का।
फल पाया आज हम सम दम का, भँवर हुआ मन सेत पदम का॥
फूंक दिया घर लाज शरम का, काटा फन्दा नियम धर्म का।
ज्ञान ध्यान वाचक हम छोड़ा, भक्ति भाव का पहना जोड़ा॥
भक्ति भाव की महिमा भारी, जानेंगे कोई सन्त पुजारी।
सम नाम सतपुरुष अपारा, चौथे माहिं करे दरबारा॥
सुरत शब्द मारग कोई पावे, सो हंसा चढ़ लोक सिधावे।
सो मार्ग अब राधास्वामी गाई, कोई-कोई प्रेम भक्ति से पाई॥

अब अगम का भेद गुरु क्या देता है ? इस बात को ध्यान से समझने का यत्न करें। पहली बात इस लोक के जीवन में मनुष्य को सुख-शान्ति व सफलता की विधि पहले बताता है। इस लोक का जीवन संकल्प यानि विचारों का है। मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसी ही उसकी दुनिया बन जाती है इसलिए उसे हमेशा अपने विचार सुन्दर-सुन्दर रखने चाहिएं।

दूसरा है परलोक का जीवन बनाना। उसकी सहज विधि मैंने अपनी पुस्तकों में वर्णित की है। आप चाहें तो पढ़ सकते हैं। साधक, अभ्यासी योगी सज्जन मन को एकाग्र करके अपने अन्दर समाधि में आनन्द लेते हैं व नए-नए चमत्कार, सूरज, चाँद, तारे, लोक-लोकान्तर देखते हैं। मन की एकाग्रता से उनको आनन्द आता है और सिद्धि शक्ति भी आ जाती है। भक्त अपने अन्तर गुरु, पीर, देवी-देवताओं के दर्शन करते हैं और वह इष्ट अन्दर प्रकट होकर भक्त की मदद करता है। यदि मन पवित्र है तो वह होने वाली घटना भक्त को पहले ही प्रकट होकर बता देता है। अब यदि राम का भक्त या विश्वासी है तो समझता है कि राम या कृष्ण ने प्रकट होकर मुझे दर्शन दिए हैं। इसी प्रकार मुसलमान या ईसाई अपने-अपने विश्वास के अनुसार समझते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि यह शक्ति मनुष्य के सूक्ष्म मन की है जो माने हुए इष्ट के रूप में मनुष्य को दर्शन दे जाता है और अन्तर में प्रकट होकर उसे गाइड करता है। मनुष्य अपने ही मन से उसकी मूर्ति प्रकट करता है और उसे पूजता है। सभी गुरुभक्त इस मन के चक्कर में आए हुए हैं और इस मन से बनाई हुई मूर्ति के

प्रकट होने को ही सब कुछ समझ कर इससे निकल नहीं पाते हैं। पंथ व डेरों वाले अपने-अपने पंथ व डेरों में बंधे हुए हैं और लोगों को सच्चाई नहीं बता रहे हैं। मैं यह काम इसलिए करता हूं कि लोगों को असलियत का ज्ञान हो जाए।

जब मैंने 1960 से गुरु आज्ञा से सत्संग देना शुरू किया तब कुछ समय बाद ही एक सज्जन ने कहा कि आपने मेरे साधन में प्रकट होकर ऐसा-ऐसा कहा और वही बात कुछ दिन के बाद घटित हो गई। इसी ही तरह यह सिलसिला बढ़ता गया और मैं यह बातें अपने गुरु पं० फकीचन्द जी महाराज को बताता रहा। गुरु जी जो बात संगत के लिए जरूरी समझते उसे 'शिव' नामक मासिक पत्रिका में छपवा देते थे और इसका रहस्य बता देते थे। प्यारे सज्जनो! लगभग 25-30 वर्ष से अब ये घटनाएं कुछ अधिक ही घटित हो रही हैं। जिन प्रेमी, विश्वासी सज्जनों को मेरा सत्संग सुनकर विश्वास हो जाता है तो जब वे अपने गुरु का ध्यान करते हैं तो मेरा रूप प्रकट होकर उनकी मदद कर देता है। मैंने तो आज तक किसी को चेला बनाया ही नहीं है और न ही किसी को नाम दान दिया है। परन्तु जब उन भक्तों में मेरा रूप प्रकट होता है तो वे मुझे अपना गुरु मान लेते हैं। उनको जो मैं उचित समझता हूं वह राय दे देता हूँ। कुछ लोग मेरे सत्संग में बैठे हुए समाधि में चले जाते हैं। किसी में मेरा रूप प्रकट हो जाता है तो किसी में प्रकाश और किसी-किसी में शब्द व प्रकाश दोनों प्रकट हो जाते हैं। प्यारे पाठको! मुझे कुछ पता नहीं कि किस ने मेरा ध्यान किया और किसमें मेरा रूप प्रकट हुआ? बहुत लोगों को तो मैं जानता भी नहीं हूँ। फिर यह रहस्य क्या है? रहस्य यह है कि मनुष्य का मन जिसमें विश्वास होता है उसका रूप बनाकर जो मनुष्य चाहता है, मदद कर देता है।

यही अगम का भेद है कि ध्यान-योग में जो भी योगी या साधक नजारा देखता है या जो रूप प्रकट होता है, वह मनुष्य का खुद का मन बनाता है। बाहर से कुछ नहीं आता है। अब यह बात या रहस्य न तो राम या कृष्ण आकर अपने भक्तों को बता सकते हैं न कोई गया हुआ गुरु जी आकर बता सकता है। आज जो महात्मा टेलीविजन पर सत्संग दे रहे हैं या अपने आश्रमों में सत्संग दे रहे हैं वे सज्जन भी यह सच्चाई नहीं बता रहे हैं। क्योंकि यह रहस्य खोलने पर उन्हें जो अन्धविश्वास में धन व सम्मान मिल रहा है वह इतना नहीं मिल

पायेगा। तो बात स्पष्ट है कि जब मैं जीता-जागता किसी के अन्तर जाकर प्रकट नहीं होता तो सोचो कौन गुरु कौन देवता, कौन भूत मनुष्य में आकर प्रकट होकर उसकी मदद करता है और कौन भूत या प्रेम आकर उसे डराता है? यह इसके मन पर जैसे संस्कार पड़े होते हैं वह ही मन की एकाग्रता से प्रकट होकर मनुष्य को भासते हैं। इसको धर्म में माया कहा है जो भासती है परन्तु होती नहीं है।

अब कितने लोग मेरे से प्रसाद बनवा कर ले जाते हैं और उनके काम उनके विश्वास के कारण हो जाते हैं और वे इसका श्रेय मुझे देते हैं जबकि मुझ में कोई सिद्धि शक्ति नहीं है। यदि मेरे में कुछ सिद्धि शक्ति होती तो दो-चार आदमी अपने घर, परिवार या गांव वालों को तो कुछ दे देता। मेरी बात को समझो और बाहर मत भटको। परमात्मा का कोई रूप नहीं है। एक रूप जहां आपका विश्वास है बनाकर उसको पूर्ण मानो। जो भी आप चाहोगे, मिल जायेगा। उसके घर किसी चीज की कमी नहीं है-

साई के दरबार में कमी काहू की नाहि।
वन्दा मौज न पावहि चूक चाकरी माहि॥

मनुष्य के इस भ्रम को कोई जीता-जागता अनुभवी सज्जन जो तत्त्वज्ञान का अनुभव रखता है, दूर कर सकता है। जैसे पीछे शब्द में कहा है-

गुरु ने दीन्हा भेद अगम का, सुरत चली तज देश भ्रम का॥

जब इस भ्रम के दूर हो जाने से योगी या साधक को यह ज्ञान हो जायेगा कि जो मेरे अन्तर इष्ट का रूप प्रकट होता है, वह तो मेरा अपना ही मन बनाता है। यह भासता है वास्तव में है नहीं, यह तो माया है तब वह आगे तलाश करेगा और आगे उसे शब्द व प्रकाश के लोक का अनुभव होगा। यह अन्तर के प्रकाश व शब्द का अनुभव ही सतलोक या सच्चखण्ड है। तो बात स्पष्ट है कि ये योगी या साधक तब तक आगे नहीं जा सकते जब तक इनको कोई अगम का भेदी गुरु न मिल जाए। इसलिए हर ग्रन्थ में पूर्ण गुरु की महिमा गाई गई है। पूर्ण गुरु पूर्ण ज्ञान व पूर्ण विवेक का नाम है। सुखमनी साहब में लिखा है-

सतपुरुष जिन विवेकिया, सतगुरु तिसका नाम।
ताके संग शिष उभरे, नानक हरि गुन ज्ञान॥

कबीर ने भी पूर्ण गुरु के लिए ऐसा कहा है-

सतगुरु चीन्हो रे भाई।
सतनाम बिन सब नर बूढ़े, नर्क पड़ी चतुराई॥
वेद पुरान भागवत गीता, इनको सबै दृढ़ावै।
जाको जन्म सुफल रे प्राणी, सो पूरा गुरु पावै॥
बहुत गुरु संसार कहावै, मन्त्र देत है काना।
उपजै विनसै या भवसागर, मरम न काहू जाना॥

अत: जीवित गुरु अगर भेदी है तो मनुष्य के सब भ्रम दूर करके उसे सदा के लिए मुक्त अवस्था में पहुंचा देता है और उसकी भटकन छुटा देता है और यह निश्चय करा देता है कि मालिक उसके अंग संग है। जैसा कि इस शब्द में कहा है-

मोके कहां ढूंढे बन्दे, मैं तो तेरे पास मैं रे॥ टेक॥
ना तीर्थ में ना मूर्त में, ना एकान्त निवास में रे।
ना मन्दिर में ना मस्जिद में, ना काशी कैलाश में रे॥
ना मैं जप में ना तप में, ना व्रत उपवास में रे।
ना मैं क्रिया कर्म में रहता, ना ही योग संन्यास में रे॥
नहीं प्राण में नहीं पिण्ड में, नहीं ब्रह्माण्ड आकाश में रे।
ना मैं त्रिकुटी भंवर गुफा में, न सब श्वांसों की श्वास में रे॥
खोजी होए तुरत मिल जाऊं, इक पल की तैलाश में रे।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, मैं तो हूं विश्वास में रे॥

योग अनुभव का विषय है

मुझे इस राम नाम, उल्टा नाम, सार शब्द, सतनाम का या और भी जीव को समझाने-बुझाने के लिए सन्तों के द्वारा इस अनुभव के जो नाम रखे हैं उसका अनुभव बिना किसी योग, साधना के सन् 1956 में हो गया था और 1960 में मैंने गुरु आज्ञा से सत्संग देना शुरू कर दिया था। मैं मन, वचन और कर्म से यह चाहता था कि सत्संग सुनने वालों को यह ज्ञान आज ही बता दूं परन्तु बता नहीं सकता। जब पुस्तकों में यह अध्यात्मज्ञान लिखने लगा तब भी मन, वचन, कर्म से यह चाहता था कि अपना खुद का अनुभव सब साफ लिख

दूं परन्तु परिणाम यह निकला कि न तो बता ही सका और न पुस्तकों में लिख ही सका।

मैं ही नहीं पूरी दुनिया के महापुरुष आदिकाल से सत्संगों की वर्षा करते आ रहे हैं और बहुत ही सुन्दर-सुन्दर मीठी भाषा में छन्द, अलंकार लगा-लगाकर बड़े-बड़े धार्मिक ग्रन्थ अध्यात्मज्ञान के लिखे हुए हैं। जैसे गीता, रामायण, भागवत, ग्रन्थ साहब, कुरान सरीफ, बाईबल इत्यादि तथा और भी धार्मिक सम्प्रदायों के भिन्न-भिन्न ग्रन्थ हैं। सब इन ग्रन्थों को पढ़ते हैं और उनके विश्वास के अनुसार उन्हें लाभ भी होता है परन्तु अध्यात्मज्ञान के अनुभव से सब कोरे हैं। मतलब आत्मतत्त्व का अनुभव बताने या लिखने में नहीं आता है।

फिर यह सत्संग देने और धार्मिक पुस्तकें लिखने का क्या लाभ है? प्यारे पाठको! मेरा यह अनुभव है कि यदि सत्संग देने वाले सज्जन और धार्मिक ग्रन्थ लिखने वाले महापुरुष मन, वचन और कर्म से पवित्र हों तो सत्संग को ध्यान से सुनने और पुस्तकों को ध्यान से पढ़ने वालों के धर्म, कर्म के विषय में भ्रम, शंका दूर हो सकते हैं और किसी हद तक मन पर पड़े हुए घटिया संस्कारों से मुक्ति मिल सकती है। यानी यह आध्यात्मिक सत्संग और पुस्तकें यदि लेखक खुद आत्मतत्त्व का अनुभवी हो तो यह अध्यात्मज्ञान प्राप्त करने का एक भाग है। जहां तक आत्मतत्त्व की बात है यह केवल अनुभव ज्ञान से ही प्राप्त करने का है। इस विषय में कबीर साहब कहते हैं-

कहां कहे अनकही भली है।
वहां तो वेद शास्त्र कछु नाहि॥
वहां अकथ यहां कथा चली है।
कहें कबीर सुनो भाई साधो।
सोऽहम् हंसा सर्वमयी है॥

फिर कहा है-

अकथ कहानी प्रेम की कछु कहा नहीं जाए।
गूंगे केरी शर्करा खाये और मुसकायें॥

फिर कहते हैं-

समझत बने कथन नाहिं आवे, मन वाणी अलसानी।

भाव यह है कि यह विषय न तो लिखने में आता है और न बतलाने में आता है। यह केवल अनुभव का विषय है जो किसी पूर्ण तत्त्व ज्ञान के अनुभवी महापुरुष की संगत में बैठकर श्रद्धा भाव से सहज विधि सीखकर अनुभव किया जा सकता है। क्योंकि–

यह करनी का भेद है, नाही बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावै कुछ सार॥
जो दीखे सो है नाहीं, जो है वह कहा न जाई।
सैना बैना जो कोई बूझे, गूंगे का गुड़ खाई॥
सत्त गहै सतगुरु को चीन्है, सत्तनाम विश्वासा।
कहें कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा॥
जोग जुगति से भरम न छूटे, जब लग आपा न सूझै।
कहें कबीर सोई सतगुरु पूरा, जो कोई समझै बूझै॥

तो बात स्पष्ट है कि मनुष्य को जो कुछ मिलेगा वह अन्तर में मिलेगा, बाहर से नहीं। लेकिन मैं देख रहा हूं कि लोग पन्थ में आकर पन्थ से बन्ध जाते हैं और भेद को समझते नहीं हैं और न ही आजकल के गुरु इस भेद को खोलना चाहते हैं। स्कूल व कॉलेज में विद्यार्थी विद्या ग्रहण करते हैं और फिर डिग्री लेकर अपनी रोजी रोटी कमाते हैं। परन्तु यहां तो हाल यह है कि मनुष्य किसी पन्थ में जाते हैं और उस पन्थ से ही बन्धकर रह जाते हैं और ज्ञान में कोरे रह जाते हैं। इस ज्ञान के अभाव से ही लोगों में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, लड़ाई-झगड़े चलते रहते हैं। अत: मैं लोगों को सचेत करना चाहता हूं कि वह परमात्मा आपके अन्दर है। उसे जानने के लिए किसी ऐसे महापुरुष का संग करो जो मानसिक व आत्मिक मण्डल के रहस्य का ज्ञाता हो। ऐसे महापुरुष से सम्बन्ध रखने से वह ज्ञान बिना परिश्रम के आ सकता है। जैसे ग्रन्थ साहब में लिखा है–

सत् पुरुष जिन विवेकिया, सतगुरु तिसका नाम।
ताके संग शिष ऊबरे, नानक हरि गुन गान॥

खुद का या अपना स्वयं का अनुभव करने के लिए राधास्वामी वाणी में

ऐसा लिखा है–

घर में दर्शन पाओगे, सन्देह कुछ इसमें नहीं।
मैं तो घट में हूं तुम्हारे, ढूंढलो मुझको वहीं॥
शब्द सुनते हो मेरा, अन्तर में चित्त को साधकर।
सुरत मेरा रूप है, इसको समझ लेना यही।
सूक्ष्म हूं स्थूल हूं, कारण हूं कारण से परे।
देख दृष्टि को जमा कर, अपने अन्तर में कहीं॥
चाह जब दर्शन की होगी, देख लोगे आप तुम।
जागते में सोते में, सन्ध्या में मैं हूं सब कहीं॥
राधा स्वामी धाम में, सेवक हूं राधास्वामी का।
मेल मेला राम में, इसकी परख आई नहीं॥

बात समझने वाली है। यदि बुद्धि में बैठ जाय तो मिनटों में बेड़ा पार है और यदि नहीं बैठती है तो जन्म-जन्मान्तर बीत जाते हैं। एक रोज कहीं सत्संग के बाद एक सज्जन ने मेरे से प्रश्न किया कि आप कोई बहुत ही आसान विधि बताएं जिससे सहज में कल्याण हो सके। मैंने कहा-भाई। किसी पूर्ण विवेकी व अनुभवी महापुरुष की संगत से ही सबसे आसान विधि है, आत्मज्ञान के लिए। उसने फिर पूछा कि आपकी नजर में कोई ऐसा महापुरुष है क्या? मैंने कहा-सज्जन मेरी नजर आपको क्या काम देगी? आप खुद तलाश करें तो अच्छा रहेगा क्योंकि यह विश्वास का विषय है। इसके लिए कबीर ने कहा है–

सतगुरु चीन्हो रे भाई।
सतनाम बिन सब नर बूढ़े, नरक पड़ी चतुराई॥
वेद पुरान भागवत गीता, इनको सबै दृढ़ावै।
जाको जन्म सुफल रे प्राणी, सो पूरा गुरु पावै॥
बहुत गुरु संसार कहावें, मन्ना देत हैं काना।
उपजे विनसे या भवसागर, मरम न काहू जाना॥
सतगुरु एक जगत में गुरु है, सो भव से कढ़िहारा।
कहे कबीर जगत के गुरुआ, मरि-मरि ले औतारा॥

धर्म के नाम पर अज्ञान मंच

मैं अपने अनुभव के आधार पर आज के विज्ञान युग के बुद्धिमान् सज्जनों को बताना चाहता हूं कि जब महात्मा सज्जनों ने अपने-अपने सम्प्रदायों का नाम रखा तब शायद कोई मनुष्य की भलाई देखकर रखा होगा। परन्तु आज जितने भी सम्प्रदाय हैं सब अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझकर दूसरे सम्प्रदाय के लोगों से नफरत करते हैं। सन्तों ने यह भेदभाव दूर करने की शिक्षा दी है। आज के समय में आत्म-ज्ञान की शिक्षा केवल वाचक ज्ञान बनकर रह गई है और मानव जाति अज्ञान के कारण अपने-अपने सम्प्रदायों से बंधी हुई है। इसलिए एक को दूसरे से घृणा व द्वेष है। एक गुरु दूसरे गुरु को छोटा और अपने आपको बड़ा समझ रहा है। एक ही हिन्दू धर्म के कितने छोटे-छोटे आगे सम्प्रदाय बन गए हैं। इसी ही तरह इस्लाम व ईसाइयों के धर्म के नाम पर टुकड़े बन गए हैं।

यह मानवता अज्ञान के कारण धर्म के नाम पर बंट गई है और जगह-जगह लड़ाई-झगड़े हो रहे हैं। परमात्मा एक शक्ति है जो न छोटा है न बड़ा। वह सब मनुष्यों का एक है, दो-चार नहीं है। बुद्धिमान् सज्जन मेरी बात को समझे। मनुष्यों की सबकी आत्मा एक ही जैसी है, एक जैसा रक्त सबमें वह रहा है और सब मनुष्यों की मुख्य आवश्यकताएं भी एक जैसी हैं। धर्म कर्म की पूरी समझ या जानकारी के लिए कोई लम्बी चौड़ी बात नहीं है। लोग सत्संग सुनते हैं, गुरुओं के पास जाते हैं लेकिन बात को नहीं पकड़ते हैं। जैसे-

सब ही आए सतगुरु आगे।
दर्श न पकड़ा वचन न लागे॥
कहो इस सत्संग से क्या फल पाया।
वक्त खोया और जन्म गंवाया॥

आज ये जितने सम्प्रदाय और मजहब हैं उनमें पाखण्ड छाया हुआ है। ये सब काल व माया के चक्र में हैं। लोगों को धर्म के नाम पर लूटा जा रहा है और उन्हें सच्चाई नहीं बताई जा रही है और इसी अज्ञानता के कारण भारत धर्म के नाम पर अलग-अलग टुकड़ों में बंट गया है और इस धार्मिक भेदभाव

को दूर करने का केवल एक ही तरीका है कि लोगों को यह सच्चाई बताई जाए कि वह मालिक जिसे दुनिया के भिन्न-भिन्न मजहबों के लोग भिन्न-भिन्न रूप में पूजते हैं वह मालिक पूर्ण रूप से इस दुनिया में नहीं रहता है। वह अंश रूप में हर मनुष्य के अन्दर समाया हुआ है। स्वामी जी का भी कथन है-

भान रूप मालिक सुन भाई।
हर हिरदे में रहा समाई॥

अत: हम सब उस मालिक के अंश हैं और हम सब भाई-भाई हैं। अलग-अलग सम्प्रदाय होने से हम अलग-अलग नहीं हैं एक हैं। इसलिए उस मालिक की असली पूजा यही है कि इन्सान इन्सान की सेवा करे उसका हितकारी बने और आपस में प्रेम से रहे।

मैंने योगसाधन करके अपने अनुभव के आधार पर दस छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी हैं जो संसार का काम काज करते हुए बुद्धिमान् व समझदार सज्जन केवल दो माह में सब पढ़ सकता है। इससे उसको धर्म सम्बन्धी कोई शंका व भ्रम नहीं रहेगा। उसके बाद यदि वह खुद यह अनुभव करना चाहे कि मनुष्य में यह बोलने वाला तत्त्व क्या है तो बुद्धिमान् सज्जन के लिए यह 6 महीने का कोर्स है। बात लगन व मन में गहरी तड़फ की है। खुद अनुभव करके देख लें क्योंकि यह विषय अनुभव का है। मैं कोई अहंकार से यह बात नहीं कहता अपितु अपने अनुभव के आधार पर आज के बुद्धिमान् सज्जनों को यह कहना चाहता हूं कि वे इस धर्मसम्बन्धी रहस्य को जानना चाहते हैं तो मेरी या मेरे गुरु महाराज पण्डित फकीर चन्द जी जो होशियारपुर (पंजाब) में हुए हैं, उनका साहित्य पढ़ लें। आपको धर्म का पूरा रहस्य समझ में आ जायेगा। यह रहस्य न जानने के कारण आज का मानव जगह-जगह धर्म के लिए भटकता फिर रहा है। बात बहुत छोटी सी है परन्तु रहस्य में होने के कारण समझ में नहीं आती है। इसके लिए हरियाणा शैली में एक शब्द है-

शब्द

इसका भेद बता मेरे अवधू, साबत करनी कर रहा तू।
डारी भूल जगत में आया, जित देखूं उड़ै तू ही तू॥

कीडी में छोटा बन बैठा, हाथी के मांह बड़ा तू।
बना महावत ऊपर बैठा, हाकन वाला तू ही तू॥
इसका भेद.....
चौरा के मांह चौर कहावे, बदमाशा के संग में तू।
चोरी करके भागन चाल्या, पकड़न वाला तू ही तू॥
इसका भेद.....
माँ जाये के लठ बजवा दे, सिर फुड़वावन वाला तू।
थाने के मांह बन्द करवा दे, राजीनामा करा दे तू॥
इसका भेद.....
नर-नारी में आप विराजे, भिखारी के संग में तूं।
झोली ठा के मांगन चाल्या, घालन वाला तूं ही तूं॥
इसका भेद.....
दाता के मांह आप बिराजे, दुनिया के मांह दिखै तू।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु मिल गए न्यूं के न्यूं॥
इसका भेद.....

यहां पर भक्त ऐसे ज्ञानी व मुक्त पुरुष से प्रश्न कर रहा है जिसको वह परमात्मा इस संसार में अंश रूप में सबमें खेलता नजर आ रहा है। वह परमात्मा ही यहां जीव-जन्तु, कीड़ी, हाथी, महावत, चौर, बदमाश, भले व बुरे में स्वयं ही खेल रहा है। यह सब उसकी लीला है। जैसे ऊपर सूर्य एक है और दुनिया में उसकी किरणें सूर्य वाला काम कर रही हैं। ऐसा ही महर्षि शिवव्रत लाल जी ने अपने शब्द में कहा है-

यह जग नाटकशाला साधो, यह जग नाटकशाला।
राजा रंक फकीर औलिया, दृश्य विचित्र निराला॥

कहने का भाव यही है कि यहां इस दुनिया में जो कुछ हो रहा है वह सब मालिक का खेल है जो स्वयं हर जीव में अंश रूप में विराजमान होकर खोल रहा है। परमात्मा सर्वव्यापक है। राधास्वामी वाणी में इसके लिए लिखा है-

आपहि माली बाग लगावे, सींचे आप फुलवारी।
आपहि फूल कली है आपै, आप बना बनवारी॥

कोयल बनकर कूक सुनावै, बैठ आम की डाली।
बौर देख बौरा हो जाये, बौरापन से न्यारी॥
आपहि बौर आप अमृत रस, आप आप रस धारी।
आपहि चखै आम रस रसना, आप करे रखवारी॥
फूल मध्य है बास सुबासा, रंग रूप गुलकारी।
आपहि निरखै अपनी शोभा, निरखत होत सुखारी॥
यह तो भेद कोई गुरुमुख पावै, गुरुपद होय भिखारी।
हम तो सार मर्म लख पाया, राधास्वामी की बलिहारी॥

तो बात स्पष्ट है कि यह सब खेल उस परमात्मा का है। वह जो करता है अच्छा करता है। मनुष्य को अज्ञान है। उसे अपने निज रूप का ज्ञान नहीं है। इसलिए वह यहां सुख-दु:ख महसूस करता रहता है। यह सब माया है जो भासती है, वास्तव में है नहीं। मनुष्य इसको सच समझकर दुखी रहता है। वह अपने ही विचारों से कभी सुखी तो कभी दुखी होता है। एक तो यह बाहर की दुनिया जिसमें हम जी रहे हैं, इसका मनुष्य को सही ज्ञान नहीं है। वह यहां की हर वस्तु को सच समझकर उसे अपना मान बैठता है और जब वह वस्तु नष्ट होती है तो वह दुखी होता है। दूसरा जो भक्त या योगी सज्जन जो अपने अन्तर ध्यान योग में तरह-तरह के रंग, रूप, दृश्य देखते हैं उनमें उलझ कर वह सुखी दुखी होते रहे हैं। जबकि सच्चाई यह है कि जो कुछ वे अनुभव करते हैं वह वास्तव में सत्य नहीं है जिसे वह महसूस करते हैं। इसी का नाम धर्म-कर्म में माया है जो मन को मोहती है और इस माया या भ्रम को कोई अनुभवी महापुरुष ही दूर कर सकता है। जैसे-

''अपने उरझे उरझिया, उरझा सब संसार।
अपने सुरझे सुरझिया, यह गुरु ज्ञान विचार॥''
''जोग जुगति से भरम न छूटे, जग लग आपा न सूझे।
कहे कबीर सोई सतगुरु पूरा, जो कोई समझै बूझै॥''
''साधो सतगुरु अलख लखाया।
जब आप आप दरसाया॥''

आध्यात्मिक योगी महापुरुषों की योग्यता

मनुष्य एड़ी से चोटी तक आध्यात्मिक है। वह यहां इस लोक में विशेष-विशेष काम करने के लिए आता है। शरीर, मन, आत्मा और सुरत रूप तत्त्व से बने हुए इस मनुष्य में यह सुरत परमात्मा का एक छोटा सा अंश है जो यहां भिन्न-भिन्न वेश-भूषा व भिन्न-भिन्न आकृति बनाकर अपना खेल करता है।

हमारे अवतार या पैगम्बर कोई राजा बनकर आया। कोई ऊंट, बकरी, भेड़ों को चराने वाला बनकर आया तो कोई गायों का चराने वाला बनकर आया। जैसे कहा है-

गायों का पाली कृष्ण मुरारी, अजब निराली शान तेरी॥

इन महापुरुषों में से किसी ने राजगद्दी छोड़कर, घर-परिवार छोड़कर भिक्षु बनकर ज्ञान दिया किसी ने शरीर पर राख लगाकर अपने शरीर को कुरूप बनाकर घर-घर भिक्षा मांगी। कुछ ऋषि-मुनियों ने अपने स्त्री-बच्चों सहित जंगलों में अपना आश्रम बनाकर, त्याग तप से योगसाधन करके खुद अनुभव करके अपने शिष्यों को ज्ञान दिया। राजे-महाराजे इनका सम्मान करते थे। समय के साथ-साथ धर्म-कर्म के विधि-विधान बदलते गए क्योंकि यहां समय के साथ सब कुछ बदलता रहता है।

समय के अनुसार योग-साधन की विधि

ध्यान प्रथम युग, मख युग दूजे।
द्वापर परतोषित, प्रभु पूजे॥
कलि केवल एक नाम आधारा।
श्रुति स्मृति सन्त मत सारा॥

भाव यह है कि सतयुग में केवल ध्यान से परमात्मा की अनुभूति हो जाती थी। त्रेता में यज्ञ करने से और द्वापर में मूर्ति-पूजा से ही ज्ञान हो जाता था परन्तु कलयुग में केवल नाम के साधन से ही परमात्मा की अनुभूति होती है। कलयुग में परमात्मा सन्त के अवतार के रूप में आते हैं और मनुष्यों को ज्ञान की सहज विधि बताकर उन्हें अनुभव करा देते हैं। इस युग में सन्तों ने परमात्मा के अनुभव करने का दरवाजा हर मनुष्य के लिए खोल दिया है। सन्तों ने कहा

है कि भाई अपनी रोजी-रोटी ईमानदारी से कमाओ और अपने बाल-बच्चों को पालो। किसी आत्म-तत्त्व के अनुभवी महापुरुष को गुरु बनाकर योगसाधन की विधि पूछ लो और सुबह शाम समय निकाल कर साधन-अभ्यास करो और सत्संग सुनो। सत्संग को समझो और उस पर अमल करो। गृहस्थी के लिए जो जीवन-सूत्र है, उनके अनुसार जीवन जीओ। सहज ही आपको परमात्मा की अनुभूति अपने अन्तर ही घर में हो जायेगी।

इस कलयुग में सन्तों की रहनी में आप सभी जानते हैं कि आदि गुरु कबीर साहब किस तरह कपड़े बुनकर अपना जीवन निर्वाह करते थे। इसी प्रकार गुरु नानक देव जी, रैदास जी, पलटू साहब तथा अन्य और सन्त सभी बहुत सादा जीवन जीते हुए मनुष्यों को बहुत ऊंचा ज्ञान दे गए। राधास्वामी दयाल की भी यही शिक्षा है।

राधा स्वामी पंथ जो सन्त मत है उसमें महापुरुष या गुरु की विशेष योग-साधन की रहनी बताई है और सन्त मत में सभी सन्त यही मुख्य रहनी मानते हैं।

गुरु के लिए आध्यात्मिक योग्यता

गुरु सोई जो शब्द स्नेही, शब्द बिना दूसर नहीं सेही।
शब्द कमावे सो गुरू पूरा, उन चरणन की बन जा धूरा॥
शब्द भेद लेकर तुम उनसे, शब्द कमाओ तुम तन मन से।
और पहचान करो मत कोई, लक्ष अलक्ष देखो न सोई॥

शिष्य की पहचान (योग्यता)

विषयों से जो होए उदासा, परमार्थ की जा मन आसा।
धन सन्तान प्रीत नहीं जाके, जगत पदार्थ चाह नहीं ताके॥
तन इन्द्री आसक्त नहीं होई, नींद भूख आलस जिन खोई।
बिरह बाण जिन हृदये लागा, खोजत फिरे साध गुरु जागा॥
साध फकीर मिले जो कोई, सेवा करे करे दिल जोई।
ऐसी करनी जाकी देखें, आप आए सतगुरु तिस मिले॥

भाव यह है कि जो अध्यात्मज्ञान की सच्ची तड़फ रखता है, सतगुरु आप ही आकर उस से मिलता है। क्या यह ठीक है ? हां। यह बिल्कुल सही

है। मेरे को सच्ची लगन थी। मन में तड़फ थी। किसी ने सूचना दी, मैं गया और थोड़े से समय की संगत से ही मुझे इस राम नाम, राधास्वामी नाम या सार शब्द का अनुभव हो गया। यानी कोई देर लगाने की बात नहीं है।

मैंने आपको अपनी समझ व अनुभव के आधार पर आध्यात्मिक महापुरुषों की योग्यता अवतारों यानी पैगम्बरों से लेकर इस कलयुग के सन्तों तक बताने का यत्न किया है। जो सेवादारों के पहरे में बैठे हैं, वे सन्त नहीं हैं। सन्त समस्थिति वाले मुक्त पुरुष को कहते हैं। महर्षि शिवव्रत लाल जी ने मेरे गुरु महाराज के नाम एक शब्द लिखा है जिसमें फकीर की पहचान बताई है, जो इस प्रकार है–

जिसके मन नहीं चिन्ता व्यापे, जग में वही है दास फकीर।
अभय रहे चित्त गुरु पद राखे, धीर बीर गम्भीर॥
शान्त भाव व्यवहार परमारथ, कभी न हो दिलगीर।
पर की पीर न जिसे सतावे, सो अधरम बेपीर॥
अपना रूप सम्भाले पल-पल, काट मोह जंजीर।
वह फकीर है गुरु को प्यारा, महावीर चित धीर॥
चाह गई चिन्ता सब भागी, आया भवनिधि तीर।
हंस रूप धर त्याग नीर को, गह लिया ज्ञान का तीर॥
राधास्वामी गुरु का सच्चा बालक, पहर विराग का चीर।
तन के रहते मुक्त विदेही, सहै न द्वन्द्व शरीर॥

ऐसा फकीर जीवों के कल्याण के लिए यहां आता है वह शिष्य को ज्ञान देकर उसे अन्तर में ठहरा देता है और बाहरी गुरु का भ्रम दूर कर देता है। जैसे कहा है–

सन्त और पारस में यही अन्तरा जान।
वह लोहा कंचन करे गुरु कर ले आप समान॥

अर्थात् पारस तो लोहे को सोना ही बनाता है परन्तु सन्त सतगुरु अधिकारी जीव को अपने जैसा बना लेते हैं। इसलिए इस बात पर जोर दिया जाता है कि ऐसे पुरुषों की संगत करो जो मालिक को प्राप्त कर चुके हैं और जो वीतराग है। क्योंकि जलती हुई आग के पास बैठकर उससे लाभ उठाना सरल है, बजाय

इसके कि स्वयं आग जलाओ और लाभ उठाओ। एक शब्द है–

कछु लेना न देना मगन रहना॥ टेक॥
पांच तत्त्व का बना ये पिंजरा।
जामे बोले या मेरी मैना॥ कछु.....
गहरी नदिया नाव पुरानी।
केवटिया से मिल रहना॥ कछु.....
तेरा पिया तेरे घट में बसत है।
सखि खोल कर तुम देखो नैना॥ कछु.....
कहें कबीर सुनो भाई साधो।
गुरु के चरण में लिपट रहना॥ कछु.....

यहां गुरु के चरण अन्तर का प्रकाश है न कि ये बाहर के चरण। जीव बाहरी गुरु के चरणों में ही मत्था टेकते रहते हैं। यह तो एक शिष्टाचार है। इससे उसका कल्याण नहीं हो सकता। सच्चाई यह है कि योगी साधक सज्जन ध्यान योग में अपने अन्दर प्रकाश का अनुभव करते रहें। परन्तु यह प्रकाश का योगी भी काल मत तक है। इसके आगे दयाल देश है जिसे सार शब्द, अनहद, उद्गीत इत्यादि अनेक नामों से जाना जाता है और जो केवल अनुभव किया जा सकता है। अत: मनुष्य का कल्याण उसकी रहनी या क्रियात्मक साधन की शक्ति से हो सकता है और इसके लिए किसी जीवित पूर्ण गुरु की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु मनुष्य अज्ञानता में उन्हीं को गुरु मान बैठता है जिनके बड़े-बड़े आश्रम व डेरे हैं और जिनके पीछे पांच-दस हजार शिष्य फिरते हैं। जैसे कहा है–

ऐसी अन्धी दुनिया है, जाने न सन्त असन्त।
जाके संग दस बीस है, ता का नाम महन्त॥
सिहों के लहड़े नहीं, हंसों की नहीं पात।
लालों की बोरी नहीं, सन्तों की न जमात॥

अर्थात् सन्त कभी जमात लेकर नहीं चलते। जो स्वयं डेरे, धामों या दूसरे जालों में फंसे हुए हैं उनसे जीवों का उद्धार नहीं हो सकता। जिस गुरु या शक्ति से जीव का कल्याण कर उसे सतलोक पहुंचाना है वह है उसका अपने अन्तर का शब्द व प्रकाश। मैंने यह सच्चाई अपनी पुस्तकों में जगह-जगह

वर्णित की है, इसलिए यह डेरे वाले मेरी पुस्तकों को पसन्द नहीं करते हैं। परन्तु मुझे इसका कोई अफसोस नहीं है क्योंकि मैं यह काम अपने निजी स्वार्थ के लिए नहीं कर रहा हूं अपितु गुरु आज्ञा से कर रहा हूं।

सतगुरु एक जगत् में गुरु है, जग में है कढिहारा।
कहे कबीर जगत के गुरुआ, मर-मर ले अवतारा॥

जो मनुष्य सांसारिक सुख, धन व अन्य किसी वस्तु की चाह रखते हैं उनके लिए यह मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, डेरे व आश्रम उचित हैं क्योंकि लोगों के अपने विश्वास से काम हो जाते हैं परन्तु जो केवल अपना परमार्थ चाहते हैं तो उनके लिए यह सुरत शब्द योग है जिससे मनुष्य अपने आपको पहचान कर ये बाहरी कर्मकाण्ड जप, तप, व्रत इत्यादि सब छोड़ देता है। जैसे कबीर ने इस शब्द में कहा है-

शब्द

अब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई।
किरिया कर्म आचार में छोड़ा, छोड़ा तीरथ का न्हाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना॥
ना मैं जानू सेव बंदगी, ना मैं घंट बजाई।
ना मैं मूरत धरी सिंघासन, ना मैं पुष्प चढ़ाई॥
जो यह मूरत मुख से बोलै, कर असनान न्हवाई।
पांच टका हों देत ठठेरे, एकहि हों ले आई॥
ना हरि रीझे जप तप की कीन्हें, ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोती छाड़े, ना पांचों के मारे॥
दया राखि धर्म को पाले, जग से रहे उदासी।
अपना सा जीव सबको जाने, ताहि मिले अविनाशी॥
सहै कुशब्द बाद को त्यागै, छाड़ै गर्व गुमाना।
सतनाम ताही को मिलि है, कहै कबीर सुजाना॥

इस शब्द में स्पष्ट है कि पूजा, पाठ, जप, तप, तीर्थ, व्रत इत्यादि बाहरी कर्मकाण्ड से उस सत पद या अविनाशी अवस्था की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसके लिए ऊपर बताया गया आचरण आवश्यक है। यह भेद गुरु देता है। यही सतगुरु की महिमा है।

परम दयाल फकीर मिशन

इस धर्म कर्म की अज्ञानता के कारण सन् 1947 में भारत व पाकिस्तान के बंटवारे के समय हिन्दू व मुसलमानों की आपस में लड़ाई हुई थी जिसमें बहुत ही बेरहमी व निर्दयता से एक दूसरे के सिर काटे गए थे।

धर्म के इस अज्ञान को देखकर परम दयाल पण्डित फकीरचन्द जी महाराज जो मेरे आध्यात्मिक गुरु थे उन्होंने होशियारपुर 18 रेलवे मण्डी में अपने मकान के ऊपर एक झण्डा लगा दिया जिस पर तीन-चार भाषाओं में लिखा था-मनुष्य बनो, इन्सान बनो, Be man, जब मैं 1956 में आत्मज्ञान को जानने के लिए उनके घर गया था, तब वहां यह झण्डा लगा हुआ था और आज भी हर वैशाखी के दिन वह झण्डा फहराया जाता था।

परम दयाल जी ने उस समय से मनुष्य को अपने सत्संगों व पुस्तकों में बताना शुरू किया था कि हे मानव! आध्यात्मिक या धर्मात्मा बनने से पहले तुम मानव या इन्सान बनो। आध्यात्मिकता से बढ़कर इन्सानियत है। आध्यात्मिकता में अपने निज रूप को पहचानना होता है और यह अवस्था उस समय तक नहीं आ सकती जब तक पहले इन्सानियत न हो और इन्सानियत के नियमों पर न चला जाए। इन्सानियत एक बहुत विस्तृत शब्द है जिसमें सब कुछ आ जाता है। इन्सानियत धर्म की नींव है, यदि मकान की नींव ही कमजोर है तो मकान ठहर नहीं सकता। इसलिए आध्यात्मिकता से पहले इन्सानियत की जरूरत है। कबीर साहब ने इसके लिए कहा है-

गुरु पशु नर पशु त्रिया पशु, वेद पशु संसार।
मानस ताही जानिये, जाहि विवेक विचार॥
हिन्दू कहूं तो मारिये, मुसलमान भी नाहि।
पांच तत्त्व का पुतला, नानक धरिया नाम॥ (नानक)
अफसोस दुनिया में कोई इन्सान न रहा।
कोई हिन्दू और कोई मुसलमान हो गया॥
मन अन्तर में बैठ के, मन को ले तू जान।
मन को धोखा देत है, वह नहीं है इन्सान॥

मनुष्य का अपने आप में दोष देखना मनुष्यता के मार्ग में पहला कदम

है। अध्यात्म का ज्ञान प्राप्त होने पर मन के चक्कर में न आना ही इन्सानियत है। भगवान् ने मनुष्य को विशेष बुद्धि दी है जो अन्य प्राणियों में नहीं है। इस बुद्धि से वह अपना भला-बुरा सोच सकता है जिनका मन वश में नहीं है, उचित अनुचित की पहचान नहीं है वह पशु समान है। इसके लिए संस्कृत में ऐसा कहा है-

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूताः, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

अर्थात् जिन मनुष्यों में विद्या, तप, दान, ज्ञान, अच्छा आचरण, गुण व धर्म नहीं है वे इस पृथ्वीलोक पर भारस्वरूप हैं और मनुष्य का रूप धारण किए हुए पशु समान घूमते हैं।

धर्म का असली प्रयोजन यही है कि मनुष्य विशाल व पवित्र हृदय वाले व उच्च विचार वाले हों। भिन्न-भिन्न धर्म-सम्प्रदायों के होते हुए भी लोग आपस में प्रेमभाव से रहें व भाईचारे की भावना रखें। दिलों से ये धार्मिक पक्षपात व संकीर्णता के विचार दूर हो जाएं। ये विभिन्न सम्प्रदाय परिस्थिति व समय की आवश्यकता के लिए बनाए गए थे न कि लड़ाई-झगड़ा करने के लिए। धर्म सदा से रहस्य में चलता आ रहा है और आज भी इस रहस्य को नहीं खोला जा रहा है। धर्म की इसी अज्ञानता के कारण मनुष्य भटकता फिर रहा है। मन के निरर्थक भ्रमों व संशयों को दूर करके सच्चाई से ज्ञान को समझ कर उस पर अमल करना ही धर्म का मुख्य उद्देश्य है। यही सन्त मत का सार है। सन्त मत यही कहता है कि तुम अपने मन को शीशे की तरफ साफ व निर्मल कर लो ताकि इन्सानियत की असली झलक उसमें आ जाए और तुम पूर्ण पुरुष बन सको।

इस फकीर मिशन का उद्देश्य पूरी मानवता को धर्म का रहस्य बता कर धर्म का एक नाम मानव धर्म, महजबे इन्सानियत या (Religion of humanity) रखकर जोड़ने का है। हम सब मनुष्य एक ही ईश्वर के अंश हैं। ईश्वर सबका एक है कोई दो-चार नहीं है। यह एक महान् शक्ति है जिससे सूर्य, चाँद, तारे, पृथ्वी, लोक-लोकान्तर बनते हैं और नष्ट होकर उसी में समा जाते हैं। वह परमात्मा यहां नहीं रहता है। जैसे सूर्य यहां नहीं रहता उसकी केवल किरणें यहां आती हैं इसी प्रकार वह मालिक अंश रूप में हर घट में

समाया हुआ है। हमारी सुरत उस मालिक की अंश है। हम जितने दुनिया के आदमी हैं जो मन्दिरों में राम समझते हैं तथा मस्जिदों में खुदा समझते हैं। यह सब हमने मन से मान रखे हैं। असली खुदा यहां नहीं है। उस खुदा या राम का अंश यहां है जो हमारी सुरत या अपना आपा है और असली खुदा या राम की पूजा यही है कि इन्सान इन्सान के काम आए। इन्सान इन्सान का दिल न दुखाए। इन्सान इन्सान की सहायता करे और अन्तर में योगसाधन करके उस मालिक को जाने फकीर मिशन के प्रचारक इस बात को खुद समझे और अपना स्वयं का सहज योगसाधन अभ्यास किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष से सीख कर आत्म-तत्त्व के अनुभवी बने। इसके लिए सत्संग आवश्यक है।

परम दयाल फकीर मिशन का लक्ष्य पूरी दुनिया के बुद्धिमान्, समझदार मनुष्यों को धर्म का रहस्य खोलकर, समझाकर मानव धर्म के झण्डे के नीचे लाना है। इस काम को करने के लिए पहले जो ये मिशन के सदस्य हैं वे अपना स्वयं का अनुभव कर लें फिर वे जैसा चाहेंगे सहज में होता जायेगा। क्योंकि Self realization is all and everything. प्यारे परम दयाल फकीर ट्रस्ट के सज्जनो! यह विषय अनुभव का है। योजना बनाना धन्य है। परन्तु इस विषय में सफलता हमारे मन, वचन व कर्म की पवित्रता ने देनी है और यह तब हो सकता है जब हम दुनिया के जीवन में सन्तुष्ट व प्रसन्न हैं। यदि आप अपने सांसारिक जीवन में कुछ अभाव महसूस कर रहे हो तो पहले मेरी लिखी दस पुस्तकों को ध्यान से पढ़ लेना। मैंने उनमें अपने अनुभव के आधार पर इस संसार में स्वर्ग जैसा जीवन जीने की बात बताई है। क्योंकि हम गृहस्थी हैं। यदि हम अपने सांसारिक जीवन में सन्तुष्ट हैं तभी यह परम दयाल फकीर मिशन वाला काम कर सकते हैं और इसके लिए पहले मन, वचन व कर्म से पवित्र होना और फिर स्वयं का अनुभव करना आवश्यक है क्योंकि यह केवल बातों या भाषण का विषय नहीं है, अनुभव का विषय है।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नहीं।
शीश उतारे भुई धरे, तब बैठे घर माहिं॥
होमय दीरध रोग है, दारू विच माहिं॥

यानी यह मार्ग प्रेम का है। शीश का अर्थ यहां अहंकार है। मनुष्य को कई प्रकार का अहंकार है और जब तक मनुष्य अहंकारी है, यह ज्ञान अनुभव

में नहीं आ सकता है। इसके लिए काफी सत्संग व गुरु की आवश्यकता है।

वास्तव में परम दयाल फकीर चन्द जी महाराज कोई आश्रम या डेरे बनाने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने होशियारपुर में मानवता मन्दिर की स्थापना इस मानवता धर्म या मजहबे इन्सानियत का केन्द्र बनाने के लिए की थी। उनका उद्देश्य यही था कि उस केन्द्र पर बैठकर गुरु, पीर खुद उस तत्त्व का अनुभव करके मानवता के सूत्र, ध्यान योग की सहज विधि व धर्म का रहस्य खोलकर पूरी मनुष्य जाति को बताकर मानवता को जोड़ें व सुख-शान्ति दें। वे चाहते थे कि वर्तमान व भावी महात्मा अपने अन्त:करण को शुद्ध करके संसार में सच्चाई व असलियत की शिक्षा का प्रचार करें। क्योंकि जीव निर्बल, अबल, अज्ञानी हैं। वे काल कर्म के मारे हम महात्माओं की शरण आते हैं व सहारा चाहते हैं। अत: उन्हें अज्ञान में रखकर उन्हें लूटा न जाए। उन्होंने इस मिशन के लिए मानवता का जो झंडा लगाया था उसके नियम इस निम्न शब्द में हैं-

ऐ मानवता के झण्डे, कर जोड़ करे प्रणाम।
प्राणी मात्र का एक निशान, मानवता की शान गुमान।
एक मालिक की सब सन्तान, जुग जुग उड़ ऊंचे आसमान॥
तू प्राण है सबका, तन मन आत्मराम॥ मानवता.....
वह मालिक अत्यन्त महान्, पा न सका कोई उसका थान।
तुमको बांटा टुकड़े आन, मानवता की मानव ले जान॥
अन्धकार के बस में, बन गए धर्म तमाम॥ मानवता.....
जब देखा तेरा यह हाल, माँ वसुन्धरा हुई बेहाल।
दया उमड़ी पुरुष दयाल, प्रगटे जग में परम दयाल॥
भूतल गाढ़ा तुमको, मानवता के नाम॥ मानवता.....
ऐ मानव तू मानव बन, हिन्दू मुसलमान न बन।
मालिक बसता सबके तन में, जन की सेवा करे जो जन॥
निज परिवार की सेवा, भक्ति है निष्काम॥ मानवता.....
सच्चरित्रता के मार्ग आ, आशावादी ख्याल बना।
सहित विवेक धर्म कमा, फिर मालिक को सकेगा पा॥
जी और जीने दे, तू उड़ता दे पैगाम॥ मानवता.....

रंग तीन से शोभावान, ब्रह्म जीव और माया जान।
सत् चित् आनन्द की खान, भारतवर्ष का यही निशान॥
नीचे इसके आवे, जीव त्रिलोकी धामी॥ मानवता.....
चमके सूरज तीन कमाल, कबीर साहब नानक कृपाल।
राधास्वामी शिवदयाल, मानवता का दिया ख्याल॥
दिव्य लोक उड़ाना तुमको, यह परमदयाल का काम॥ मानवता.....
युग-युगान्तर उड़ता रह, मानव सेवा करता रह।
राग एकता गाता रह, दया दयाल की पाता रह॥
सुख पावे संसारी दिन-दिन, प्रात:काल व शाम॥ मानवता.....
मानवता के सन्त ने आ, 'इन्सान बनो' आदेश दिया।
जीवन की आधारशिला, रोग सोग की महा दवा॥
सन्देश मेरा पहुंचा दो, देश-देशान्तर नगर ग्राम॥ मानवता.....
अद्भुत झण्डा जग में आया, 'इन्सान बनो' इस नाम धराया।
जग कल्याण का रूप रचाया, इसे सन्त सतगुरु बनाया॥
आओ भाई बहनो, कर जोड़ करे प्रणाम॥ मानवता.....

ॐ सबको शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	प्रथम संस्करण	द्वितीय सं०	तृतीय सं०
1.	लाल कमल	1000 प्रतियां 4/03	2000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 12/06
2.	सहज योग	2000 प्रतियां 8/03	3000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 7/07
3.	सुखी जीवन का रहस्य	3000 प्रतियां 10/03	4000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 2/07
4.	मानव धर्म व अध्यात्म ज्ञान	4000 प्रतियां 1/04	4000 प्रतियां 9/05	4000 प्रतियां 3/08
5.	मानव जीवन का सुखमय सफर	4000 प्रतियां 3/04	4000 प्रतियां 9/05	4000 प्रतियां 3/08
6.	मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म	4000 प्रतियां 6/04	4000 प्रतियां 2/07	---
7.	प्रश्नोत्तरी ज्ञान गंगा	4000 प्रतियां 10/04	4000 प्रतियां 2/07	---
8.	मेरी धार्मिक खोज	4000 प्रतियां 5/05	4000 प्रतियां 10/05	---
9.	Secret of Happy Life	2000 प्रतियां 4/05	4000 प्रतियां 2/07	---
10.	ज्ञान योग	4000 प्रतियां 4/06	4000 प्रतियां 9/07	---
11.	तत्व ज्ञान दर्पण	4000 प्रतियां 5/06	4000 प्रतियां 9/07	---
12.	योग मणि	4000 प्रतियां 6/07	---	4000 प्रतियां 3/08
13.	कैलेण्डर	1000 प्रतियां 3/04	2000 प्रतियां 10/05	4000 प्रतियां 2/07

ये सभी पुस्तकें हमारी website : www.shwetkamal.in पर भी उपलब्ध है।

विषय-सूची

क्र०सं०	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	गुरु स्तुति	4
2.	प्राक्कथन	5
3.	भूमिका	7
4.	योग व योग के प्रकार	9
5.	योगसाधना में इष्ट या आदर्श	18
6.	इष्ट या आदर्श की भिन्नता	21
7.	योगसाधना के लिए आवश्यक उपदेश	23
8.	योग विधियों का सार व मंजिल	27
9.	योग साधना के आन्तरिक स्थान	33
10.	मेरे योगसाधन की विधि	35
11.	पूर्णकाम योग व मुक्त पुरुष की दृष्टि	37
12.	अगम का भेद	42
13.	योग अनुभव का विषय है	46
14.	धर्म के नाम पर अज्ञान मंच	50
15.	आध्यात्मिक योगी महापुरुषों की योग्यता	54
16.	परमदयाल फकीर मिशन	59